

सरदार भगतसिंह

# पत्र और दस्तावेज़

वीरेन्द्र सिन्धु

अमर शहीद, प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सरदार भगतसिंह की यह प्रामाणिक जीवनी वर्षों के अध्ययन और अनुसन्धान का परिणाम है। लेखिका है सरदार भगतसिंह के छोटे भाई कुलतारसिंह जी की सुपुत्री वीरेन्द्र सिंधु जिन्हें परिवार के सभी वरिष्ठ सदस्यों से जुबानी और लिखित महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ मिलीं, वे पहली बार इस पुस्तक में समाविष्ट हैं।

प्रस्तुत, संस्करण (2001) अनेक वर्षों बाद, आकर्षक ढंग से प्रकाशित किया गया है। इसमें सरदार भगतसिंह और उनके पुरुखों के जीवन-वृत्त तो हैं ही, साथ ही नवयुवक क्रान्तिकारियों द्वारा अंग्रेजों से देश की आज़ादी के संघर्ष का रोमांचक वर्णन भी है।

यह पुस्तक एक प्रामाणिक, ऐतिहासिक दस्तावेज है।

संस्करण : 2012 © वीरेन्द्र सिन्धु
ISBN : 978-81-7028-206-8
BHAGAT SINGH : PATRA AUR DASTAVEZ
(Letters and documents of Bhagat Singh)
Edited by Virender Sindhu
Printed at Shiv Shakti Printers, Delhi

**राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6**
Website : www.rajpalpublishing.com
e-mail : sales@rajpalpublishing.com

सरदार भगतसिंह

# पत्र और दस्तावेज़

क्रान्तिकारी सरदार भगतसिंह की लेखनी से

सम्पादन
वीरेन्द्र सिन्धु

राजपाल

# दो शब्द

"हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं। हम एक ऐसे उज्जल भविष्य में विश्वास रखते हैं, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण शान्ति और स्वतंत्रता का उपभोग करेगा। हम मानव रक्त बहाने के लिए अपनी विवशता पर दुःखी हैं, परन्तु क्रान्ति द्वारा सबको समान स्वतंत्रता देने और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त करने के लिए क्रान्ति में कुछ व्यक्तियों का बलिदान अनिवार्य है। इन्कलाब ज़िन्दाबाद।"

—हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना

ये शब्द उस पर्चे के हैं जो दिल्ली असेम्बली (वर्तमान पार्लियामेंट) में बम फेंकते समय भगतसिंह के साथी बटुकेश्वर दत्त ने हाउस में फेंके थे। यह ऐतिहासिक घटना 8 अप्रैल, 1929 को हुई थी। उस बम का धमाका और ये विस्फोटक शब्द आज उन दिमागों में धमाका पैदा करते हैं, जो भगतसिंह के स्वप्नों के भारत को साकार होते देखना चाहते हैं।

फांसी की कोठरी से अपने क्रान्तिकारी साथी श्री शिव वर्मा से अन्तिम भेंट के समय भगतसिंह ने ये शब्द कहे थे : "क्रान्तिकारी पार्टी में आते समय मैंने सोचा था कि अगर मैं इन्कलाब ज़िंदाबाद का नारा देश के कोने-कोने तक पहुंचा सका तो समझुंगा कि मेरे जीवन का मूल्य मुझे मिल गया, पर आज तो फांसी की कोठरी में भी अपने उस नारे की गूंज सुन रहा हूं।"

असेम्बली में बम फेंकेने से कुछ ही दिन पहले भगतसिंह ने अपने साथी सुखदेव को जो लम्बा पत्र लिखा था, उसकी कुछ पंक्तियां यों हैं : "मैं पूरे ज़ोर से कहता हूं कि मैं आकांक्षाओं और आशाओं से भरपूर हूं और जीवन की आनन्दमयी रंगीनियों से ओतप्रोत हूं, पर आवश्यकता के समय सब कुछ कुर्बान कर सकता हूं और यही वास्तविक बलिदान है।"

भगतसिंह को बचपन से ही अध्ययन का शौक था। उन्होंने अपने 23 वर्षो के छोटे-से जीवन में ही देश के मूल्यवान साहित्य को पढ़ डाला था। नेशनल कॉलेज से लेकर फांसी की कोठरी तक उनका अध्ययन बराबर जारी रहा। बहुत से क्रान्तिकारी उपन्यास पढ़ने के साथ-साथ उन्होंने फ्रांस, आयरलैंड तथा रूस की क्रान्तियों का गहरा अध्ययन किया। इस अध्ययन से भगतसिंह के विचारों में परिपक्वता आई और उनकी भावुकता यथार्थ में बदल गई। वे क्रान्तिकारी बने और क्रान्ति के दार्शनिक भी। अब उनके लिए भारत की स्वतंत्रता नई समाज-व्यवस्था की स्थापना के लिए एक साधन थी। उन्होंने विचारों का अध्ययन ही नही किया, जीवन में उससे भी अधिक तेज़ी से उन्हें उतारा भी। उनकी यह यथार्थवादी विचार परिपक्वता उनकी कलम-वाणी के द्वारा भी प्रकट हुई — उसी के कुछ उदाहरण मैंने ऊपर प्रस्तुत किए हैं। भारत की स्वतन्त्रता के इतिहास में उनके दिए नारों और तैयार पोस्टरों का विशेष महत्व है। ये नारे — ये पोस्टर—ये वक्तव्य भारत में आतंकवाद के समाप्त होने और उसके क्रान्तिकारी आन्दोलन के रूप लेने की प्राथमिक सूचना देते हैं।

असेम्बली में बम विस्फोट के समय फेंके गए पर्चे का महत्वपूर्ण वाक्य है— "हम देश

की जनता की ओर से कदम उठा रहे हैं।" इस घटना से पहले तक जनता सशस्त्र विद्रोह की दर्शक मात्र थी, इस घटना ने उसे विद्रोह का नेतृत्व भी सौंप दिया। विद्रोह अब कुछ युवकों की टोली का नाम नहीं रहा। ये युवक चुनाव न होने पर भी जनता के प्रतिनिधि हो गए। इतिहास इस दूरदर्शिता के लिए भगतसिंह की सदा वन्दना करेगा कि उन्होंने चोरों की तरह छिपकर काम करने वालों को पहली बार आन्दोलन के मंच पर ला बिठाया।

समाज में श्रमिकों और पूंजीपतियों के बीच की असमानताओं के बारे में बताते हुए 6 जून, 1929 को दिल्ली के सेशन जज की अदालत में बयान देते हुए उन्होंने कहा था—"यह भयंकर विषमताएं और विकास के अवसरों की कृत्रिम-समानताएं समाज को अराजकता की ओर ले जा रही हैं। यह परिस्थिति सदा के लिए नहीं बनी रह सकती। यह स्पष्ट है कि वर्तमान समाज-स्वव्यवस्था एक ज्वालामुखी के मुख पर बैठी आनन्द मना रही है और शोषकों के अबोध बच्चे भी करोड़ों शोषितों के बच्चों की भांति एक खतरनाक दरार के कगार पर खड़े हें। यदि सभ्यता के ढांचे को समय रहते नहीं बचाया गया तो वह नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। इसलिए क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है और जो लोग इस आवश्यकता को महसूस करते हैं, उनका यह कर्तव्य है कि वे समाज को समाजवादी आधारों पर पुनर्गठित करें। जब तक एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का तथा एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण होता रहेगा, जिसे साम्राज्यवाद कहा जा सकता है, तब तक उससे उत्पन्न होने वाली पीड़ाओं और अपमानों से मानव जाति को नही बचाया जा सकता, एवं युद्ध को मिटाने तथा शान्ति के युग का सूत्रपात करने के बारे में की जाने वाली समस्त चर्चाएं कोरा पाखण्ड हैं।" यह एक ऐसा घोषणापत्र है, जिसे सही परिप्रेक्ष्य में समझने, परखने और व्यवहार में उतारने की आज आवश्यकता प्रतीत होती है।

भगतसिंह द्वारा दिए गए अनेक वक्तव्यों, उनके द्वारा अपने साथियों और मित्रों को लिखे गए पत्रों का संकलन आज तक पुस्तक रूप में कहीं भी प्रस्तुत नहीं किया गया है। जिस समय मैंने अपनी पहली पुस्तक 'युगद्रष्टा भगतसिंह ओर उनके मृत्यंजय पुरखे' का लेखन आरम्भ किया था, तो अनेक स्थानों से सामग्री संग्रह करने में मैंने दिन-रात एक कर दिया था। उस पुस्तक में यथास्थान उनके पत्रों और वक्तव्यों को भी दिया गया था, लेकिन तभी मन में यह संकल्प भी जागा था कि भगतसिंह द्वारा जो भी कुछ लिखा गया है, इस समस्त सामग्री को पुस्तक रूप देकर राष्ट्र की इस धरोहर को राष्ट्र को ही समर्पित करना मेरा कर्तव्य है। परिस्थितियों वश इस धरोहर को सौपने में मुझे काफी समय लगा, लेकिन आज इस कार्य को पूर्ण कर आपके हाथों में प्रस्तुत करते हुए मन को संतोष हो रहा है कि मैं अपना कर्तव्य पालन करने में सक्षम हो सकी हूं। मेरे इस संकलन की सफलता पाठकों द्वारा इसे स्वीकार करने और सहेज कर रखने में निहित है, लेकिन मात्र सहेजकर रखना ही नहीं, बल्कि इस पर मनन करके—भगतसिंह द्वारा लिखे—कहे गए शब्दों को राष्ट्र के उत्थान हेत व्यवहार में उतारना इससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण होगा।

—वीरेन्द्र सिन्धु

125/ वैलबैल रोड
साउथ हैरो, मिडिल सेक्स, यू. के.

## क्रम

स्वाधीनता की लड़ाई में पंजाब का पहला उभार

भगतसिंह की कलम से लिखे जो सबसे पहले अक्षर समय की तूफानी आंधियों में सुरक्षित रह गये, वे एक कार्ड के रूप में है। यह कार्ड उन्होंने लाहौर से अपने दादा जी सरदार अर्जुनसिंह को लिखा था। भगतसिंह तब छठी कक्षा में पढ़ते थे। कार्ड उर्दू में है। उस पर तारीख नहीं लिखी है, पर लाहौर के डाकखाने की मुहर में 22 जुलाई, 1918 और खटकड़कलां के डाकखाने को मुहर में 23 जुलाई, 1918 है।

# ओ३म्

श्रीमान् पूज्य बाबा जी,
नमस्ते

अर्ज़ ये है कि खत आपका मिला—पढ़कर दिल को खुशी हासिल हुई। इम्तहान की बाबत ये है कि मैंने पहले इस वास्ते नहीं लिखा था, कि हमें बताया नहीं था। अब हमें अंग्रेजी और संस्कृत का बताया है। उनमें मैं पास हूं। संस्कृत में मेरे 150 नम्बरों में से 110 नम्बर हैं। अंग्रेजी में 150 में से 68 नम्बर हैं, जो 150 नम्बरों में से 50 नम्बर ले आये वो पास होता है। नम्बर 68 से अच्छा पास हो गया हूं। किसी किस्म की फिकर न करें। बाकी नहीं बताया और छुट्टियां 8 अगस्त को पहली छुट्टी होगी। आप कब आयेंगे, तहरीर फरमावें।

आपका ताबेदार
भगतसिंह

✡✡

डाकखाने की मुहर के अनुसार भगतसिंह ने यह पत्र 14 नवम्बर, 1921 को लाहौर से अपने दादा जी को लिखा था। 14 वर्ष के भगतसिंह उस समय की घटनाओं और परिस्थितियों का अध्ययन किस गहराई से कर रहे थे, हड़ताल की बात से यह साफ जाहिर है। इस छोटी उम्र में सतर्कता इतनी कि उस बात को लाइनों के बीच उल्टे रुख लिखा।

# ओ३म्

मेरे पूजा दादा साहब जी,

नमस्ते

अर्ज़ यह है कि इस जगह खैरियत है और आपकी खैरियत श्री परमात्मा जी से नेक मतलूब हूं। अहवाल ये है कि मुद्दत से आपका कृपा पत्र नहीं मिला। क्या सबब है? कुलबीरसिंह, कुलतारसिंह की खैरियत से जल्दी मुत्तला फरमायें। बेबे साहबा अभी मोरांवाली से वापस नहीं आयीं। बाकी सब खैरियत है।

आपका ताबेदार
भगतसिंह

(कार्ड की दूसरी तरफ)

माताजी को नमस्ते। चाची साहबा के नमस्ते। मंगू चमार अभी तक तो नहीं आया। मैंने एक पुरानी किताब मोल ले ली थी, जो कि बहुत सस्ती मिल गई थी।

(कार्ड की लाइनों के बीच उल्टे रुख)

आजकल रेलवे वाले हड़ताल की तैयारी कर रहे हैं। उम्मीद है कि अगले हफ्ते के बाद जल्द शुरू हो जायेगी।

✡✡

पंजाब हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने पंजाब की भाषा तथा लिपि की समस्या पर लेख निमंत्रित किये और सर्वश्रेष्ठ लेख पर 50 रुपये पुरस्कार देने की घोषणा की। इस स्पर्धा में भगतसिंह ने लेख लिखा। यह 1922-23 की बात है। सम्मेलन के प्रधान मन्त्री श्री भीमसेन विद्यालंकार ने इसे सुरक्षित रखा और भगतसिंह के बलिदान के बाद 28 फरवरी, 1933 के ‘हिन्दी सन्देश’ में प्रकाशित किया।

# पंजाब की भाषा तथा लिपि विषयक समस्या

"किसी समाज अथवा देश को पहचानने के लिए उस समाज अथवा देश के साहित्य से परिचित होने की परमावश्यकता होती है, क्योंकि समाज के प्राणों की चेतना उस समाज के साहित्य में भी प्रतिच्छवित हुआ करती है।"

उपरोक्त कथन की सत्यता का इतिहास साक्षी है। जिस देश के साहित्य का प्रवाह जिस ओर बहा, ठीक उसी ओर वह देश भी अग्रसर होता रहा। किसी भी जाति के उत्थान के लिए ऊँचे साहित्य की आवश्यकता हुआ करती है। ज्यों-ज्यों देश का साहित्य ऊंचा होता जाता है. त्यों- त्यों देश भी उन्नति करता जाता है। देशभक्त. चाहे वे समाज-सुधारक हो अथवा राजनैतिक नेता. सबसे अधिक ध्यान देश के साहित्य की ओर दिया करते हैं। यदि वे सामयिक समस्याओं तथा परिस्थितियों के अनुसार नवीन साहित्य की सृष्टि न करें तो उनके सब प्रयत्न निष्फल हो जायें और उनके कार्य स्थायी न हो पाएं।

शायद गैरीबाल्डी को इतनी जल्दी सेनाएं न मिल पाती, यदि मेजिनी ने 30 वर्ष देश में साहित्य तथा साहित्यिक जागृति पैदा करने में हो न लगा दिये होते। आयरलैंड के: पूनरुत्थान के साथ गैलिक भाषा के पूनरुत्थान का प्रयत्न भी उसी वेग से किया गया। शासक लोग आयरिश लोगों को दबाये रखने के लिए उनकी भाषा का दमन करना इतना आवश्यक समझते थे कि गैलिक भाषा की एक-आध कविता रखने के कारण छोटे-छोटे बच्चों तक को दंडित किया जाता था। रूमो, वाल्तेयर के साहित्य के बिना फ्रांस की राज्यक्रान्ति घटित न हो पाती। यदि तालस्ताय, कार्ल मार्क्स तथा मैक्सिम गोर्की इत्यादि ने नवीन साहित्य पैदा करने में वर्षो व्यतीत न कर दिये होते, तो रूस की क्रान्ति न हो पाती, साम्यवाद का प्रचार तथा व्यवहार तो दूर रहा।

यही दशा हम सामाजिक तथा धार्मिक सुधारको में देख पाते हैं। कबीर के साहित्य के कारण उनके भावों का स्थायी प्रभाव दीख पड़ता है। आज तक उनकी मधुर सरस कविताओं को सुनकर लोग मुग्ध हो जाते हैं।

ठीक यही बात गुरु नानकदेव जी के विषय में भी कही जा सकती है। सिक्ख गरुओं ने अपने मत के प्रचार के साथ जब नवीन सम्प्रदाय स्थापित करना शुरू किया, उस समय उन्होंने नवीन साहित्य की आवश्यकता भी अनुभव की और इसी विचार से गुरु अंगददेव जी ने गुरुमुखी लिपि बनाई। शताब्दियों तक निरन्तर युद्ध और मुसलमानों के आक्रमणों के कारण पंजाब में साहित्य की कमी हो गई थी। हिन्दी भाषा का भी लोप-सा हो गया था। इस समय किसी भारतीय लिपि को ही अपनाने के लिए उन्होंने कश्मीरी लिपि को अपना लिया। तत्पश्चात् गुरु अर्जुनदेव जी तथा भाई गुरुदास जी के प्रयत्न से आदि-गन्थ का संकलन हुआ। अपनी लिपि तथा अपना साहित्य बनाकर अपने मत को स्थायी रूप देने में उन्होंने यह बहुत प्रभावशाली तथा उपयोगी कदम उठाया था।

उसके बाद ज्यों-ज्यों परिस्थिति बदलती गई, त्यों-त्यों साहित्य का प्रवाह भी बदलता गया। गुरुओं के निरन्तर बलिदानों तथा कष्ट-सहन से परिस्थिति बदलती गई। जहां हम

प्रथम गुरु के उपदेश में भक्ति तथा आत्म-विस्मृति बेर भाव सुनते हैं और निम्नलिखित पद में कमाल आजिज़ी का भाव पाते हैं:

नानक नन्हे हो रहे, जैसी नन्ही दूब।
और घास जरि जात है, दूब खूब की खूब।।

वहीं पर हम नवें गुरु श्री तेगबहादुर जी के उपदेश में पददलित लोगों की हमदर्दी तथा उनकी सहायता के भाव पाते हैं:

बांहि जिन्हां दी पकड़िए, सिर दीजिए बांहि न छोड़िए।
गुरु तेगबहादुर बोलया, धरती पै धर्म न छोड़िए।।

उनके बलिदान के बाद हम एकाएक गुरु गोविन्दसिंह जी के उपदेश में क्षात्र धर्म का भाव पाते हैं। जब उन्होंने देखा कि अब केवल भक्ति-भाव से ही काम न चलेगा, तो उन्होंने चण्डी की पूजा भी प्रारंभ की और भक्ति तथा क्षात्र-धर्म का समावेश कर सिक्ख समुदाय को भक्तों तथा योद्धाओं का समूह बना दिया। उनकी कविता (साहित्य) में हम नवीन भाव देखते हैं।

वे लिखते हैं:
जे तोहि प्रेम खेलण का चाव, सिर धर तली गली मोरी आव।
जे इत मारग पैर धरीजै, सिर दीजै कांण न कीजै।।

और फिर...

सूरा सो पहिचानिये, जो लड़े दीन के हेत।
पुर्जा पुर्जा कट मरे, कभूं न छांडे खेत।।

और फिर एकाएक खड्ग की पूजा प्रारंभ हो जाती है:

खग खण्ड विहंड, खल दल खण्ड अति रन मंड प्रखंड।
भुज दण्ड अखण्ड, तेज प्रचंड जोति अभंड भानुप्रभं।।

उन्हीं भावों को लेकर बाबा बन्दा आदि मुसलमानों के विरुद्ध निरन्तर युद्ध करते रहे, परन्तु उसके बाद हम देखते हैं कि जब सिक्ख सम्प्रदाय केवल अराजकों का एक समूह रह जाता है और जब वे गैर कानूनी (out-law) घोषित कर दिये जाते हैं, तब उन्हें निरन्तर जंगलों में ही रहना पड़ता है। अब इस समय नवीन साहित्य की सृष्टि नहीं हो सकी। उनमें नवीन भाव नहीं भरे जा सके। उनमें क्षात्र वृत्ति थी, वीरत्व तथा बलिदान का भाव था और मुसलमान शासकों के विरुद्ध युद्ध करते रहने का भाव था, परन्तु उसके बाद क्या करना होगा, यह ये भली-भांति नहीं समझे। तभी तो उन वीर योद्धाओं के समूह (मिसलें) आपस में भिड़ गये। यहीं पर सामयिक भावों की त्रुटि बुरी तरह अखरती है। यदि बाद में रणजीतसिंह जैसा वीर योद्धा और चालाक शासक न निकल आता, तो सिक्खों को एकत्रित करने के लिए कोई उच्च आदर्श अथवा भाव शेष न रह गया था।

इन सबके साथ एक बात और भी खास ध्यान देने योग्य है। संस्कृत का सारा साहित्य हिन्दू समाज को पुनर्जीवित न कर सका, इसीलिए सामयिक भाषा में नवीन साहित्य की सृष्टि की गई। उस सामयिक भाव के साहित्य ने अपना जो प्रभाव दिखाया वही हम आज

तक अनुभव करते हैं। एक अच्छे समझदार व्यक्ति के लिए क्लिष्ट संस्कृत के मंत्र तथा पुरानी अरबी की आयतें इतनी प्रभावकारी नहीं हो सकतीं जितनी की उसकी अपनी साधारण भाषा की साधारण बातें।

ऊपर पंजाबी भाषा तथा साहित्य के विकास का संक्षिप्त इतिहास लिखा गया है। अब हम वर्तमान अवस्था पर आते हैं। लगभग एक ही समय पर बंगाल में स्वामी विवेकानन्द तथा पंजाब में स्वामी रामतीर्थ पैदा हुए। दोनों एक ही ढर्रे के महापुरुष थे। दोनों विदेशों में भारतीय तत्त्वज्ञान की धाक जमाकर स्वयं भी जगत्-प्रसिद्ध हो गए, परन्तु स्वामी विवेकानन्द का मिशन बंगाल में एक स्थायी संस्था बन गया, पर पंजाब में स्वामी रामतीर्थ का स्मारक तक नहीं दीख पड़ता। उन दोनों के विचारों में भारी अन्तर रहने पर भी तह में हम एक गहरी समता देखते हैं। जहां स्वामी विवेकानन्द कर्मयोग का प्रचार कर रहे थे, वहां स्वामी रामतीर्थ भी मस्तानावार गाया करते थे:

हम रूखे टुकड़े खायेंगे, भारत पर वारे जायेंगे।
हम सूखे चने चबायेंगे, भारत की बात बनायेंगे।
हम नंगे उमर बितायेंगे, भारत पर जान मिटायेंगे।

वे कई बार अमरीका में अस्त होते हुए सूर्य को देखकर आंसू बहाते हुए कहा करते थे—'तुम अब मेरे प्यारे भारत में उदय होने आ रहे हो। मेरे इन आंसुओं को भारत के सलिल सुन्दर खेतों में ओस की बूंदों के रूप में रख देना।' इतना महान देश तथा ईश्वर-भक्त हमारे प्रान्त में पैदा हुआ हो, परन्तु उसका स्मारक तक न दिख पड़े, इसका कारण साहित्यिक फिसड्डीवन के अतिरिक्त क्या हो सकता है?

यह बात हम पग-पग पर अनुभव करते हैं। बंगाल के महापुरुष श्री देवेन्द्र ठाकुर तथा श्री केशवचन्द्र सेन की टक्कर के पंजाब में भी कई महापुरुष हुए हैं, परन्तु उनकी वह कद्र नहीं और मरने के बाद वे जल्द ही भुला दिए गए, जैसे गुरु ज्ञानसिंह जी इत्यादि। इन सबकी तह में हम देखते हैं कि एक ही मुख्य कारण है, और वह है साहित्यिक रुचि जागृति का सर्वथा अभाव।

यह तो निश्चित ही है कि साहित्य के बिना कोई देश अथवा जाति उन्नति नहीं कर सकती, परन्तु साहित्य के लिए सबसे पहले भाषा की आवश्यकता होती है और पंजाब में वह नहीं है। इतने दिनों से यह त्रुटि अनुभव करते रहने पर भी अभी तक भाषा का कोई निर्णय न हो पाया। उसका मुख्य कारण हैं हमारे प्रान्त के दुर्भाग्य से भाषा को मज़हबी समस्या बना देना। अन्य प्रान्तों में हम देखते है कि मुसलमानों ने प्रान्तीय भाषा को खूब अपना लिया है। बंगाल के साहित्य-क्षेत्र में कवि नज़रुल-इस्लाम एक चमकते सितारे हैं। हिन्दी कवियों में लतीफ हुसैन 'नटवर' उल्लेखनीय हैं। इसी तरह गुजरात में भी हैं। परन्तु दुर्भाग्य है पंजाब का। यहां पर मुसलमानों! का प्रश्न तो अलग रहा, हिन्दु-सिक्ख भी इस बात पर न मिल सके।

पंजाब की भाषा अन्य प्रान्तों की तरह पंजाबी ही होनी चाहिए थी, फिर क्यों नहीं हुई, यह प्रश्न अनायास ही उठता है, परन्तु यहां के मुसलमानों ने उर्दू को अपनाया। मुसलमानों में भारतीयता का सर्वथा अभाव है, इसीलिए वे समस्त भारत में भारतीयता का महत्त्व न समझकर अरबी लिपि तथा फारसी भाषा का प्रचार करना चाहते हैं। समस्त

भारत की एक भाषा और वह भी हिन्दी होने का महत्त्व उनकी समझ में नहीं आता। इसलिए वे तो अपनी उर्दू की रट लगाते रहे और एक ओर बैठ गए।

फिर सिक्खों की बारी आई। उनका सारा साहित्य गुरुमुखी लिपि में है। भाषा में अच्छी-खासी हिन्दी है, परन्तु मुख्य पंजाबी भाषा है। इसलिएं सिक्खों ने गुरुमुखी लिपि में लिखी जानें वाली पंजाबी भाषा को ही अपना लिया। वे उसे किसी तरह छोड़ नहीं सकते थे। वे उसे मज़हबी भाषा बनाकर उससे चिपट गए।

इधर आर्यसमाज का आविर्भाव हुआ। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने समस्त भारतवर्ष में हिन्दी प्रचार करने का भाव रखा। हिन्दी भाषा आर्यसमाज का एक धार्मिक अंग बन गई। धार्मिक अंग बन जाने से एक लाभ तो हुआ कि सिक्खों की कट्टरता से पंजाबी की रक्षा हो गई और आर्यसमाजियों की कट्टरता से हिन्दी भाषा ने अपना स्थान बना लिया।

आर्यसमाज के प्रारंभ के दिनों में सिक्खों तथा आर्यसमाजियों की धार्मिक सभाएं एक ही स्थान पर होती थीं। तब उनमें कोई भिन्न भेदभाव न था, परन्तु पीछे 'सत्यार्थ प्रकाश' के किन्हीं दो-एक वाक्यों के कारण आपस में मनोमालिन्य बहुत बढ़ गया और एक-दूसरे से घृणा होने लगी। इसी प्रवाह में बहकर सिक्ख लोग हिन्दी भाषा को भी घृणा की दृष्टि से देखने लगे। औरों ने इसकी और किंचित भी ध्यान नं दिया।

बाद में कहते हैं कि आर्यसमाजी नेता महात्मा हंसराज जी ने लोगों से कुछ परामर्श किया था कि यदि वह हिन्दी लिपि को अपना लें, तो हिन्दी लिपि में लिखी जाने वाली पंजाबी भाषा यूनिवर्सिटी में मंजूर करवा लेंगे. परन्तु दुर्भाग्य- वश वे लोग संकीर्णता के कारण और साहित्यिक जागृति के न रहने कं कारण इस बात के महत्त्व को समझ ही न सके और वैसा न हो सका। खैर! तो इस समय पंजाब में तीन मत हैं। पहला मुसलमानों का उर्दू सम्बन्धी कटटर पक्षपात, दूसरा आर्यसमाजियों तथा कुछ हिन्दुओं का हिन्दी सम्बन्धी, तीसरा पंजाबी का।

इस समय हम एक-एक भाषा के सम्बन्ध में कुछ विचार करें, तो अनुचित न होगा। सबसे पहले हम मुसलमानों का विचार रखेंगे। वे उर्दू के कटटर पक्षपाती हैं। इस समय पंजाब में इसी भाषा का जोर भी है। कोर्ट की भाषा भी यही है, और फिर मुसलमान सज्जनों का कहना यह है कि उर्दू लिपि में ज्यादा बात थोड़े स्थान में लिखी जा सकती है। यह सब ठीक है, परन्तु हमारे सामने इस समय सबसे मुख्य प्रश्न भारत को एक राष्ट्र बनाना है। एक राष्ट्र बनाने के लिए एक भाषा होना आवश्यक है, परन्तु यह एकदम हो नहीं सकता। उसके लिए कदम-कदम चलना पड़ता है। यदि हम अभी भारत की एक भाषा नहीं बना सकते तो कम से कम लिपि तो एक बना देनी चाहिए। उर्दू लिपि तो सर्वांगसम्पूर्ण नहीं कहला सकती, और फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि उसका आधार फारसी भाषा पर है। उर्दू कवियों की उड़ान चाहे वे हिन्दी (भारतीय) ही क्यों न हों, ईरान के साकी और अरब की खजूरों को जा पहुंचती है। काजी नज़रुल-इस्लाम की कविता में तो धूर्जटी, विश्वामित्र और दुर्वासा की चर्चा बार-बार है, परन्तु हमारे पंजाबी हिन्दी-उर्दू कवि उस ओर ध्यान तक भी न दे सके। क्या यह दुःख की बात नहीं? इसका मुख्य कारण भारतीयता और भारतीय साहित्य से उनकी अनभिज्ञता है। उनमें भारतीयता आ ही नही पाती, तो फिर उनके रचित साहित्य से हम कहां तक भारतीय बन सकते है? केवल उर्दू पढ़ने वाले विद्यार्थी भारत के

पुरातन साहित्य का ज्ञान नहीं हासिल कर सकते। यह नहीं कि उर्दू जैसी साहित्यिक भाषा में उन ग्रन्थों का अनुवाद नहीं हो सकता, परन्तु उसमें ठीक वैसा ही अनुवाद हो सकता है, जैसा कि एक ईरानी को भारतीय साहित्य सम्बन्धी ज्ञानोपार्जन के लिए आवश्यक हो।

हम अपने उपरोक्त कथन के समर्थन में केवल इतना ही कहेंगे कि जब साधारण आर्य और स्वराज्य आदि शब्दों को 'आर्या' और 'स्वराजिया' लिखा और पढ़ा जाता है तो गूढ़ तत्त्वज्ञान सम्बन्धी विषयों की चर्चा ही क्या? अभी उस दिन श्री लाला हरदयाल जी एम. ए. की उर्दू पुस्तक 'कौमें किस तरह जिन्दा रह सकती हैं?' अनुवाद करते हुए सरकारी अनुवादक ने ऋषि नचिकेता को उर्दू में लिखा होने से नीची कुतिया समझकर 'ए बिच आफ लो ओरिजिन' अनुवाद किया था। इसमें न तो लाला हरदयाल जी का अपराध था, न अनुवादक महोदय का। इसमें कसूर था उर्दू लिपि का और उर्दू भाषा की हिन्दी भाषा तथा साहित्य में विभिन्नता का।

शेष भारत में भारतीय भाषाएं और लिपियां प्रचलित हैं। ऐसी अवस्था में पंजाब में उर्दू का प्रचार कर क्या हम भारत से एकदम अलग-थलग हो जावें? नहीं। और फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि उर्दू के कट्टर पक्षपाती मुसलमान लेखकों की उर्दू में फारसी का ही आधिक्य रहता है। 'जमींदार' और 'सियासत' आदि मुसलमान समाचार पत्रों में तो अरबी का जोर रहता है, जिसे एक साधारण व्यक्ति समझ भी नहीं सकता। ऐसी दशा में उसका प्रचार कैसे किया जा सकता है? हम तो चाहते हैं कि मुसलमान भाई भी अपने मज़हब पर पक्के रहते हुए ठीक वैसे ही भारतीय बन जायें जैसे कि कमाल टर्क थे। भारतोद्धार तभी हो सकेगा। हमें भाषा आदि के प्रश्नों को मार्मिक समस्या न बनाकर खूब विशाल दृष्टिकोण से देखना चाहिए।

इसके बाद हम हिन्दी-पंजाबी भाषाओं की समस्या पर विचार करेंगे। बहुत से आदर्शवादी सज्जन समस्त जगत को एक राष्ट्र, विश्व राष्ट्र बना हुआ देखना चाहते है। यह आदर्श बहुत सुन्दर है। हमको भी इसी आदर्श को सामने रखना चाहिए। उस पर पूर्णतया आज व्यवहार नहीं किया जा सकता, परन्तु हमारा हर एक कदम, हमारा हर एक कार्य इस संसार की समस्त जातियों, देशों तथा राष्ट्रों को एक सुदृढ़ सूत्र में बांधकर सुख वृद्धि करने के विचार से उठना चाहिए। उससे पहले हमको अपने देश में यही आदर्श कायम करना होगा। समस्त देश में एक भाषा, एक लिपि, एक साहित्य, एक आदर्श और एक राष्ट्र बनाना पड़ेगा, परन्तु समस्त एकताओं से पहले एक भाषा का होना ज़रूरी है, ताकि हम एक-दूसरे को भली-भांति समझ सके। एक पंजाबी और एक मद्रासी इकट्ठे बैठकर केवल एक-दूसरे का मुंह ही न ताका करें, बल्कि एक-दूसरे के विचार तथा भाव जानने का प्रयत्न करें, परन्तु यह पराई भाषा अंग्रेजी में नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान की अपनी भाषा हिन्दी में। यह आदर्श भी पूरा होते-होते अभी कई वर्ष लगेंगे। उसके प्रयत्न में हमें सबसे पहले साहित्यिक जागृति पैदा करनी चाहिए। केवल गिनती के कुछ-एक व्यक्तियों में नहीं, बल्कि सर्वसाधारण में। सर्वसाधारण में साहित्यिक जागृति पैदा करने के लिए उनकी अपनी ही भाषा आवश्यक है। इसी तक के आधार पर हम कहते हैं कि पंजाब में पंजाबी भाषा ही आपको सफल बना सकती है।

अभी तक पंजाबी साहित्यिक भाषा नहीं बन सकी है और समस्त पंजाब की एक

भाषा भी यह नहीं है। गुरुमुखी लिपि में लिखी जाने वाली मध्य पंजाब की बोलचाल की भाषा को ही इस समय तक पंजाबी कहा जाता है। वह न तो अभी तक विशेष रूप से प्रचलित हीं हो पाई है और न ही साहित्यिक तथा वैज्ञानिक ही बन पाई है। उसकी ओर पहले तो किसी ने ध्यान ही नहीं दिया, परन्तु अब जो सज्जन उस ओर ध्यान भी दे रहे हैं, उन्हें लिपि की अपूर्णता बेतरह अखरती है। संयुक्त अक्षरों का अभाव और हलन्त न लिख सकने आदि के कारण उसमें भी ठीक-ठीक सब शब्द नहीं लिखे जा सकते, और तो और, पूर्ग शब्द भी नहीं लिखा जा सकता। यह लिपि तो उर्दू से भी अधिक अपूर्ण है और अब हमारे सामने वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर निर्भर सर्वांगसम्पूर्ण हिन्दी लिपि विद्यमान है, फिर उसे अपनाने में हिंचक क्या? गुरुमुखी लिपि तो हिन्दी अक्षरों का ही बिगड़ा हुआ रूप है। आरंभ में ही उसका उ का img, अ का img बना हुआ है और म ट ठ आदि तो वे ही अक्षर हैं। सब नियम मिलते हैं फिर एकदम उसे ही अपना लेने से कितना लाभ हो जाएगा? सर्वांगसम्पूर्ण लिपि को अपनाते ही पंजाबी भाषा उन्नति करना शुरू कर देगी। और उसकें प्रचार में कठिनाई ही क्या है? पंजाब की हिन्दू स्त्रियां इसी लिपि से परिचित हैं। डी.ए.वी. स्कूलों और सनातन धर्म स्कूलों में हिन्दी ही पढ़ाई जाती है। ऐसी दशा में कठिनाई ही क्या है? हिन्दी के पक्षपाती सज्जनों से हम कहेंगे कि निश्चय ही हिन्दी भाषा ही अन्त में समस्त भारत की एक भाषा बनेगी, परन्तु पहले से ही उसका प्रचार करने से बहुत सुविधा होगी। हिन्दी लिपि के अपनाने से ही पंजाबी हिन्दी की-सी बन जाती है। फिर तो कोई भेद ही नहीं रहेगा और इसकी जरूरत है, इसलिए कि सर्वसाधारण को शिक्षित किया जा सके और यह अपनी भाषा के अपने साहित्य से ही हो सकता है। पंजाबी की यह कविता देखिए—

ओ राहिया राहे जान्दया, सुन जा गल मेरी,
सिर ते पग तेरे बलैत दी, इहनू फूक मआतड़ा ला।।

और इसके मुकाबले में हिन्दी की बड़ी-बड़ी सुन्दर कविताएं कुछ प्रभाव न कर सकेगा, क्योंकि वह अभी सर्व साधारण के ह्लदय के ठीक भीतर अपना स्थान नही बना सकी हैं। वह अभी कुछ बहुत पराई-सी दीख पड़ती हैं। कारण कि हिन्दी का आधार संस्कृत है। पंजाब उससे कोसों दूर हो चुका है। पंजाबी में फारसी ने अपना प्रभाव बहुत कुछ रखा है। यथा, चीज़ का जमा 'चीजें' न होकर फारसी की तरह 'चीज़ा' बन गया है। यह असूल अन्त तक कार्य करता दिखाई देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि पंजाबी के निकट होने पर भी हिन्दी अभी पंजाबी हदय से काफी दूर है। हां. पंजाबी भाषा के हिन्दी लिपि में लिखे जाने पर और उसके साहित्य बनाने के प्रयत्न में निश्चय ही वह हिन्दी के निकटतर आ जायगी।

प्राय: सभी मुख्य तर्कों पर तर्क किया जा चुका है। अब केवल एक बात कहेंगे। बहुत-से सज्जनों का कथन है कि पंजाबी भाषा में माधुर्य, सौन्दर्य और भावुकता नहीं है। यह सरासर निराधार है। अभी उस दिन—

लच्छीए जित्थे तू पानी डोलिया ओत्थे उग पये सन्दल दे बूटे

वाले गाने के माधुर्य ने कवीन्द्र रवीन्द्र तक को मोहित कर लिया और वे झट अंग्रेजी में अनुवाद करने लगे- O lachhi, where there spilt water, where there spilt water ... etc ... etc...

बहुत से और उदाहरण भी दिये जा सकते हैं। निम्न वाक्य क्या किसी अन्य भाषा की

कविताओं से कम है?—

पिपले दे पतया वे केही खड़खड़ लायी ऐ,
पत्ते झड़े पुराने हुण रुत्त नवयां दी आयी आ।।

और फिर जब पंजाबी अकेला अथवा समूह में बैठा हो तो 'गौहर' के यह पद जितना प्रभाव करेंगे, उतना कोई और भाषा क्या करेगी?

लाम लक्खां ते करोड़ा दे शाह बेखे
न मुसाफिरां कोई उधार देंदा,
दिने रातीं जिन्हां दे कूच डेरे
न उन्हां दे थायीं कोई इतबार देंदा।
भौरे बहंदे गुला दी वाशना ते
ना सप्पा दे मुहां ते कोई प्यार देंदा
गौहर समय सलूक हन ज्यूदया दे
मोयां गियां नूं हर कोई बिसार देंदा।

और फिर—

जीम ज्यूदिया नूं क्यों मारना ऐं, जेकर नहीं तूं मोया नूं जिऔण जोगा
घर आये सवाली नूं क्यों घूरना ऐं, जेकर नहीं तू हत्थीं खैर पौण जोगा
मिले दिलां नूं क्यों बिछोड़ना ऐं, जेकर नहीं तूं बिछड़यां नू मिलौण जोगा
गौहरा बदिया रख बन्द खाने, जेकर नहीं तू नेकीआं कमौण जोगा।

और फिर अब तो दर्द, मस्ताना, दीवाना बड़े अच्छे-अच्छे कवि पंजाबी की कविता का भंडार बढ़ा रहे हैं।

ऐसी मधुर, ऐसी विमुग्धकारी भाषा तो पंजाबियों ने ही न अपनाया, यही दुःख है। अब भी नहीं अपनाते, समस्या यही है। हरेक अपनी बात के पीछे मज़हबी डंडा लिये खड़ा है। इसी अड़ंगे को किस तरह दूर किया जाए, यही पंजाब की भाषा तथा लिपि विषयक समस्या है, परन्तु आशा केवल इतनी है कि सिक्खों में इस समय साहित्यिक जागृति पैदा हो रही है। हिन्दुओं में भी है! सभी समझदार लोग मिलकर-बैठकर निश्चय ही क्यों नहीं कर लेते! यही एक उपाय है इस समस्या के हल करने का। मज़हबी विचार से ऊपर उठकर इस प्रश्न पर गौर किया जा सकता है, वैसे ही किया जाए और फिर अमृतसर के 'प्रेम' जैसे पत्र की भाषा को जरा साहित्यिक बनाते हुए पंजाब यूनिवर्सिटी में पंजाबी भाषा को मंजूर करा देना चाहिए। इस तरह सब बखेड़ा तय हो जाता है। इस बखेड़े के तय होते ही पंजाब में इतना सुन्दर और ऊंचा साहित्य पैदा होगा कि यह भी भारत की उत्तम भाषाओं में गिनी जाने लगेगी।

✡✡

1923 के उत्तरार्ध में घर से पहली बार फरार होते समय भगतसिंह यह पत्र अपने पिता सरदार किशनसिंह के लिए छोड़ गये थे:

पूज्य पिता जी,

नमस्ते!

मेरी ज़िन्दगी मकसदे आला (उच्च उद्देश्य) यानी आज़ादी-ए-हिन्द (भारत की स्वतंत्रता) के असूल (सिद्धांत) के लिए वक्फ (दान) हो चुकी है। इसलिए मेरी ज़िन्दगी में आराम और दुनियाबी खाहशात (सांसारिक इच्छा) बायसे कशिश (आकर्षक) नहीं हैं।

आपको याद होगा कि जब मैं छोटा था, तो बापू जी ने मेरे यज्ञोपवीत के वक्त ऐलान किया था कि मुझे खिदमते वतन (देश सेवा) के लिए वक्फ कर दिया गया है लिहाज़ा मैं उस वक्त की प्रतीक्षा पूरी कर रहा हूं।

उम्मीद है आप मुझे माफ फरमाएंगे।

आपका ताबेदार
भगतसिंह

✡✡

घर से फरार होकर भगतसिंह कानपुर जा पहुंचे और स्वर्गीय श्री गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा संपादित-प्रकाशित साप्ताहिक ‘प्रताप’ के सम्पादक मंडल में काम करते हुए क्रान्तिकारी दल के कार्य करने लगे। उन्हीं दिनों उन्होंने 15 मार्च, 1926 के ‘प्रताप’ में ‘एक पंजाबी युवक’ के नाम से बब्बर अकाली आन्दोलन के शहीदों पर यह लेख लिखा।

# होली के दिन रक्त के छींटे बबर अकाली फांसी पर

होली के दिन-27 फरवरी, 1926 के दिन, जब हम लोग खेल—कूद में व्यस्त हो रहे थे, उसी समय इस विशाल प्रदेश के एक कोने में एक भीषण काण्ड किया जा रहा था। सुनोगे तो सिहर उठोगे! ‘कांप उठोगे।। लाहौर सेंट्रल जेल में ठीक उसी दिन छह बबर अकाली वीर फांसी पर लटका दिये गये। श्री किशनसिंह जी गड्गज्ज, श्री सन्तासिंह जी, श्री दिलीपसिंह जी, श्री नन्दसिंह जी, श्री करमसिंह जी व श्री धरमसिंह जी लगभग दो वर्ष से अपने इसी अभियोग में जो उपेक्षा, जो लापरवाही दिखा रहे थे, उसी से जाना जा सकता था कि वे इस दिन की प्रतीक्षा कितने चाव से करते थे। महीनों बाद जज महोदय ने फैसला सुनाया। पांच को फांसी, बहुतों को काला पानी अथवा देश-निकाला और लम्बी-लम्बी कैदें। अभियुक्त वीर गरज उठे। उन्होंने आकाश को अपने जयघोषों से गुंजायमान कर दिया। अपील हुई। पांच की जगह छह मृत्युदण्ड के भागी बने! उस दिन समाचार पढ़ा कि दया के लिए अपील भेजी गई है, पंजाब सचिव ने घोषणा की कि अभी फांसी नहीं दी जायेगी।

प्रतीक्षा थी, परन्तु एकाएक क्या देखते हैं कि होली के दिन शोकग्रस्त लोगों का एक छोटा समूह उन वीरों के मृत शवों को श्मशान में लिए जा रहा है। चुपचाप उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया समाप्त हो गई।

नगर में वही धूम थी। आने-जाने वालों पर उसी प्रकार रंग डाला जा रहा था। कैसी भीषण उपेक्षा थी! यदि वे पथभ्रष्ट थे तो होने दो, उन्मत्त थे तो होने दो, वे निर्भीक देशभक्त तो थे। उन्होंने जो कुछ किया था, इस अभागे देश के ही लिए तो किया था? वे अन्याय न सहन कर सके, देश की पतित अवस्था को न देख सके, निर्बलों पर ढाये जाने वाले अत्याचार उनके लिए असह्य हो उठे, आम जनता का शोषण यह बर्दाश्त न कर सके, उन्होंने ललकारा और वे कूद पड़े कर्मक्षेत्र में। वे सजीव थे, वे सदृश थे? कर्मक्षेत्र की भीषणते! धन्य है तू!! मृत्यु के पश्चात् मित्र-शत्रु सब समान हो जाते हैं, यह आदर्श है पुरुषों का। अगर उन्होंने कोई घृणित कार्य किया भी हो, तो स्वदेश के चरणों में जिस साहस और तत्परता से उन्होंने अपने प्राण चढ़ा दिये, उसे देखते हुए तो उनकी पूजा की जानी चाहिए। श्री टेगार्ड महोदय विपक्षी दल के होने पर भी जतीन मुकर्जी, बंगाल के वीर क्रान्तिकारी, की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए उनकी वीरता, देशप्रेम और कर्मशीलता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा कर सकते हैं, परन्तु हम, कायर नरपशु, एक क्षण के लिए भी आनन्द-विलास छोड़ वीरों की मृत्यु पर आह तक भरने का साहस नहीं करते! कितनी निराशाजनक बात है! उन गरीबों का जो अपराध नौकरशाही की दृष्टि में था, उसका उन्होंने पर्याप्त दण्ड, क्रूर नौकरशाही की दृष्टि में भी पा लिया। इस भीषण दुखान्त नाटक का एक और पर्व समाप्त हो गया। अभी यवनिका-पतन नहीं हुआ है। नाटक अभी कुछ दिन और भीषण दृश्य दिखायेगा। कथा लम्बी है, सुनने के लिए जरा दूर तक पीछे मुड़ना होगा।

असहयोग आन्दोलन पूरे यौवन पर था। पंजाब किसी से पीछे नहीं रहा। पंजाब में सिक्ख भी उठे, बड़ी गहरी नींद से उठे और उठे खूब जोरों के साथ। अकाली आन्दोलन शुरू हुआ। बलिदानों की लड़ी लग गई। मास्टर मोतासिंह, खालसा मिडिल स्कूल, माहलपुर, जिला होशियारपुर, के भूतपूर्व मास्टर महोदय ने एक व्याख्यान दिया। उनका वारण्ट निकला। परन्तु सम्राट का आतिथ्य उन्हें स्वीकार न था। यों ही जेलों में चले जाने के वे विरोधी थे। उनके व्याख्यान फिर भी होते रहे। कोट फतूही नामक ग्राम में भारी दीवान हुआ, पुलिस ने चारों ओर से घेरा डाला, फिर भी मास्टर मोतासिंह ने व्याख्यान दिया। अन्त में प्रधान की आज्ञा से सभी दर्शक उठ गये। मास्टर जी न जाने किधर पहुंचे। बहुत दिनों तक इसी तरह यह आंखमिचौनी का खेल होता रहा। सरकार बौखला उठी। अन्त में एक हमजोली ने धोखा दिया और डेढ़ वर्ष बाद एक दिन मास्टर साहब पकड़ लिए गये। यह पहला दृश्य था उस भयानक नाटक का।

गुरु का बाग आन्दोलन शुरू हुआ। निहत्थे वीरों पर जिस समय भाड़े के टट्टू टूट पड़ते, उन्हें मार-मारकर अधमरा-सा कर देते, देखने-सुनने वालों में से कौन होगा जो द्रवित न हो उठा हो! चारों ओर गिरफ्तारियों की धूम थी। सरदार किशनसिंह गड़गज्ज के नाम भी वारण्ट निकला। मगर वे भी तो उसी दल के थे। उन्होंने भी गिरफ्तार होना स्वीकार नहीं किया। पुलिस हाथ धोकर पीछे पड़ गई, पर फिर भी वे बचते ही रहे। उनका संगठित किया हुआ अपना एक क्रान्तिकारी दल था। निहत्थों पर किये जाने वाले अत्याचारों को वे सहन न कर सके। इस शांतिपूर्ण आन्दोलन के साथ-साथ उन्होंने शस्त्रों का प्रयोग भी जरूरी समझा।

एक ओर कुत्ते, शिकारी कुत्ते, उनको खोज निकालने के लिए सूंघते फिरते थे, दूसरी ओर निश्चय हुआ कि खशामदियों (झोलीचुक्कों) का सुधार किया जाए। सरदार किशनसिंह जी कहते थे, अपनी रक्षा के लिए हमें सशस्त्र ज़रूर रहना चाहिए, पर अभी कोई और कदम न उठाना चाहिए। परन्तु बहुमत दूसरी ओर था। अन्त में फैसला हुआ कि तीन व्यक्ति अपने नाम घोषित कर दें और सारी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले लें तथा झोलीचुक्कों का सुधार शुरू कर दें। श्री कर्मसिंह, श्री धन्नासिंह तथा श्री उदयसिंह जी आगे बड़े। यह उचित था अथवा अनुचित, इसे एक ओर हटाकर ज़रा उस समय की कल्पना तो कीजिए, जब इन नवीन वीरों ने शपथ ली थी—

“हम देश-सेवा में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देंगे, हम प्रतिज्ञा करते हैं कि लड़ते-लड़ते मर जाएंगे, मगर जेल जाना मंजूर न करेंगे।”

जिन्होंने अपने परिवार का मोह त्याग दिया था वे लोग जब ऐसी शपथ ले रहे थे, उस समय कैसा सुन्दर, मनोरम, पवित्रता से परिपूरित दृश्य रहा होगा! आत्म-त्याग की पराकाष्ठा कहां है? साहस और निर्भीकता की सीमा किस ओर है? आदर्शपरायणता की चरमता का निवास किधर है.?

श्याम चुरासी, होशियारपुर ब्रांच रेलवे लाइन के एक स्टेशन के निकट सबसे पहले एक सूबेदार पर हाथ साफ किया गया। उसके बाद इन तीनों व्यक्तियों ने अपने नाम भी घोषित कर दिए। सरकार ने पूरी ताकत लगाकर इन्हें पकड़ने की कोशिश की, मगर सफलता न मिली। रुड़की कलां में सरदार किशनसिंह गड़गज्ज घिर गए। उनके साथ एक

और युवक भी था जो वहीं घायल होकर पकड़ा गया। परन्तु किशनसिंह वहां से भी अपने शस्त्रों की सहायता से बच निकले। रास्ते में उन्हें एक साधु मिला। उसने उन्हें बताया कि उसके पास एक ऐसी बूटी है कि जिसकी सहायता से मनचाहा काम आसानी से किया जा सकता है। भ्रम में फंसकर एक दिन वे अपने शस्त्र रखकर इसी साधु के पास गए। कुछ दवाई रगड़ने को देकर साधु बूटी लेने गया और पुलिस को ले आया। सरदार साहब पकड़ लिए गए। वह साधु सी.आई.डी. बिभाग का सब-इन्सपेक्टर था। बबर अकाली वीरों ने अपना काम खूब ज़ोरों के साथ शुरू कर दिया। कितने ही सरकार के सहायक मार डाले गए। दो आब-व्यास और सतलुज के बीच में, जालन्धर और 'होशियारपुर का जिला पहले ही भारत के राजनैतिक मानचित्र में प्रसिद्ध है। 1915 के शहीदों में भी अधिकतर इन्हीं जिलों के लोग थे। अब फिर वहीं पर धूम मची। पुलिस विभाग ने सारी शक्ति खर्च कर दी, परन्तु कुछ न बन पड़ा। जालंधर से कुछ दूर एक बिलकुल छोटी-सी नदी है। उसके किनारे एक गांव में 'चौतासाहब' नामक गुरुद्वारा है। उसमें श्री कर्मसिह जी, श्री धन्नासिंह जी, श्री उदयसिंह जी तथा श्री अनूपसिंह जी दो-एक और व्यक्तियों के साथ बैठे थे, चाय बनाने की तैयारियां हो रही थीं। बैठे-बैठे श्री धन्नासिंह ने कहा, 'बाबा कर्मसिंह जी! हमें यहां से अभी इसी वक्त चल देना चाहिए। मुझे किसी बुरी घटना के घटित होने का-सा आभास हो रहा है।' 75 वर्ष के बूढ़े श्री कर्मसिंह ने इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। पर श्री धन्नासिंह अपने साथ 18 वर्षीय दिलीपसिंह को साथ लेकर चले ही गए। बैठे-बैठे बाबा कर्मसिंह ने श्री अरनूपसिंह की ओर बड़े गौर से देखकर कहा—'अनूपसिंह, तुम अच्छे आदमी नहीं हो', मगर इसके बाद उन्होंने खुद भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया। बातें अभी हो रही थीं कि सचमुच ही पुलिस आ धमकी। सारे बम श्री अनूपसिंह के कब्जे में थे। ये सब लोग उठकर गांवों में छिप गए। पुलिस ने लाख सिर मारा, पर विफल रही। अन्त में पुलिस की ओर से एक घोषणा की गई। बागियों को निकालो, वरना गांव में आग लगा दी जाएगी। पर गांव वाले विचलित नहीं हुए।

अवस्था को देखकर वे सब खुद ही बाहर निकल पड़े। सारे बम अनूपसिंह ले भागा और जाकर आत्मसमर्पण कर दिया। शेष चार व्यक्ति वहीं पर घिरे हुए खड़े थे। पुलिस के अंग्रेज कप्तान ने कहा, 'कर्मसिंह! हथियार छोड़ दो, तुम्हें माफ कर दिया जाएगा।' वीर ने ललकारकर जवाब दिया—'हम अपने देश के लिए सच्चे क्रान्तिकारी की तरह लड़ते-लड़ते शहीद हो जाएंगे, पर हथियार नहीं डाल सकते। उन्होंने अपने तीनों साथियों को ललकारा। वे सिंह की तरह गरज उठे। लड़ाई छिड़ गई। खूब दनादन गोलियां चलीं। गोली-बारूद समाप्त होने पर वे वीर पानी में कूद पड़े और घण्टों गोलियों की वर्षा होते रहने पर ये चारों वीर स्वर्गधाम सिधार गए।

श्री कर्मसिंह की आयु 75 वर्ष की थी। वह कनाडा में रह चुके थे। उनका आचरण पवित्र और चरित्र आदर्श था। सरकार ने समझा, बबर अकाली खत्म हो गए, परन्तु वे उन्नति कर रहे थे। 18 वर्षीय दिलीपसिंह एक अत्यन्त सुन्दर, सुदृढ़, हृष्ट-पुष्ट, पर अशिक्षित नवयुवक थे, और उनका डाकुओं का साथ हो गया था। धन्नासिंह जी की शिक्षा ने उन्हें डाकू से एक सच्चा क्रान्तिकारी बना दिया। उधर सरदार बन्तासिंह और बरियामसिंह आदि कई प्रसिद्ध डाकू डाकेजनी छोड़कर इनमें आ मिले।

इन सबमें मृत्यु का डर नहीं था। ये अपने पिछले कुकर्मो को धो डालना चाहते थे। इनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। एक दिन मानहाना नामक गांव में धन्नासिंह बैठे थे, पुलिस बुला ली गई। नशे में चूर धन्नासिंह बैठे ही पकड़ लिए गए। उनका भरा हुआ पिस्तौल छीनकर हाथों में हथकड़ी लगा दी गई और उन्हें बाहर लाया गया। बारह साधारण सिपाही और दो अंग्रेज़ आफिसर उनको घेरकर खड़े हो गए। ठीक उसी समय धमाके की आवाज़ हुई। मन्नासिंह जी ने बम चला दिया था। इससे वे स्वयं भी मरे और साथ ही एक अंग्रेज़ आफिसर और दस सिपाही भी। बाकी के लोग बुरी तरह घायल हुए।

इसी तरह मुण्डेर नामक गांव में बैठे हुए बन्तासिंह, ज्यालासिंह आदि कई लोग घिर गए। ये सब छत पर यैठे हुए थे। गोली चली, कुछ देर तक अच्छी झड़प होती रही, पर पुलिस ने पम्प से मिट्टी का तेल छिड़क कर घर में आग लगा दी। फिर भी वरियामसिंह बच निकले, परन्तु बन्तासिंह वहीं मारे गए।

अगर इससे पहले की एक-दो अन्य घटनाओं वर्णन कर दिया जाए तो अनुचित न होगा। बन्तासिंह बड़े साहसी पुरुष थे। एक बार, शायद जालंधर छावनी में जाकर रिसाले में पहरे पर खड़े हुए सिपाही की घोड़ी तथा राइफल छीन लाए थे। इन दिनों, जबकि पुलिस के दस्ते के दस्ते इनकी तलाश में मारे-मारे फिरते थे, कहीं जंगल में किसी दस्ते से इनकी भेंट हो गई। सरदार बन्तासिंह ने फौरन चुनौती दी— 'अगर हिम्मत हो तो दो-दो हाथ कर लो', परन्तु उस ओर तो थे पैसे के गुलाम और इस ओर आत्मोत्सर्ग के इच्छुक। तुलना कैसे हो सकती है। सिपाहियों का दस्ता चुपचाप चला गया।

इन लोगों को पकड़ने के लिए खास तौर से पुलिस नियुक्त की गई थी। और उसकी थी यह दशा। खैर, गिरफ्तारियों की भरमार थी। गांव-गांव में पुलिस की ताजीरी चौकियां बिठाई आने लगीं। धीरे-धरे बबर अकालियों का ज़ोर कम होने लगा। अब तक तो मानो इन्ही का राज्य था। जहां जाते, कुछ लोग हर्ष और चाव से, कुछ भय और त्रास से इनकी खूब आवभगत करते। सरकार के सहायक एकदम पस्त हुए बैठे थे। सूर्योदय के पहले और सूर्योदय के बाद घर से निकलने का साहस ही उन्हें न होता था। ये उन दिनों के 'हीरो' समझे जाते थे। वे वीर थे और उनकी पूजा 'वीर पूजा' समझी जाती थी। परन्तु धीरे-धीरे उनका ओर खत्म हो गया। सैकड़ों पकड़े गए, मुकदमे शुरू हुए।

वरियामसिंह अकेले बचे थे। जालंधर, होशियारपुर में पुलिस का अधिक जोर देखकर वे दूर लायलपुर में जा रहे थे। वहां पर एक दिन बिलकुल घिर गए, मगर खूब शान के साथ लड़ते हुए बच निकले, लेकिन बहुत क्क गए थे। कोई साथी भी न था। दशा बड़ी विचित्र थी। एक दिन ढेसिंया नामक गांव में अपने मामा के पास गए। शस्त्र बाहर रखे थे। शाम को भोजन करने के बाद अपने शस्त्रों के पास जा रहे थे कि पुलिस आ पहुंची। फिर घिर गए। अंग्रेज़ नायक ने उन्हें पीछे से जा पकड़ा। उन्होंने कृपाण से ही उसे बुरी तरह घायल कर दिया। फिर वे नीचे गिर गए। हथकड़ी पहनाने की सारी चेष्टाएं विफल हुई। दो वर्ष के पूर्ण दमन के पश्चात् अकाली जत्थे का अन्त हुआ। उधर मुकदमा चलने लगा, जिसका परिणाम ऊपर लिखा आ चुका है। अभी उस दिन इन लोगों ने शीघ्र फांसी पर चढ़ाए जाने की इच्छा प्रकट की थी। उनकी वह इच्छा पूरी हो गई। वे शान्त हो गए।

✿✿

अपने मित्र अमरचन्द (जो उस समय अमरीका में पड रहे थे) को लिखा भगतसिंह का सन् 1927 का पत्र।

प्यारे भाई अमरचन्द जी,

नमस्ते

अर्ज़ है कि इस दफा अचानक मां के बीमार होने पर इधर आया और आपकी मोहतीरमा वाल्दा (आदरणीया मां) के दर्शन हुए। आपका खत पढ़ा। इनके लिए यह (साथ वाला) खत लिखा। साथ ही दो-चार अल्फाज़ (शब्द) लिखने का मौका मिल गया। क्या लिखूं, करमसिंह विलायत गया है, उसका पता भेजा जा रहा है। अभी तो उसने लिखा है कि लॉ पढ़ेगा, मगर कैसे चल रहा है, सो खुदा जाने, खर्च बहुत ज्यादा हो रहा है।

भाई, हमारी मुमालिक गैर (विदेश) में जाकर तालीम (शिक्षा) हासिल करने की ख्वाहिश खूब पायमाल (बर्बाद) हुई। अच्छा, तुम्हीं लोगों को सब मुबारक, कभी मौका मिले तो कोई अच्छी-अच्छी कुतब (पुस्तकें) भेजने की तकलीफ उठाना। आखिर अमेरिका में लिट्रेचर तो बहुत है। खैर, अभी तो अपनी तालीम में बुरी तरह फंसे हुए हो।

सान्फ्रांसिस्को वगैरह की तरफ से सरदार जी (अजीतसिंह जी) का शायद कुछ पता मिल सके। कोशिश करना। कम- अज़-कम जिन्दगी का यकीन तो हो जाये। मैं अभी लाहौर जा रहा हूं। कभी मौका मिले तो खत तहरीर फरमाइयेगा। पता सूत्र मंडी, लाहौर होगा। और क्या लिखूं? कुछ लिखने को नहीं है। मेरा हाल भी खूब है। बारहा (कई बार) मुसायब (मुसीबतों) का शिकार होना पड़ा। आखिर केस वापस ले लिया गया। बादजां (बाद में) फिर गिरफ्तार हुआ। साठ हज़ार की जमानत पर रिहा हूं। अभी तक कोई मुकदमा मेरे खिलाफ तैयार नहीं हो सका और ईश्वर ने चाहा तो हो भी नहीं सकेगा। आज एक बरस होने को आया, मगर जमानत वापस नहीं ली गई। जिस तरह ईश्वर को मंजूर होगा। (लिखकर काट रखा है) ख्वाहमख्वाह तंग करते हैं[1] भाई, खूब दिल लगाकर तालीम हासिल करते चले जाओ।

आपका तावेदार<br>
भगतसिंह

अपने मुताल्लिक और क्या लिखूं, ख्वाहमख्वाह शक का शिकार बना हुआ हूं। मेरी डाक रुकती है। खतूत (पत्र) खोल लिए जाते हैं। न जाने मैं कैसे इस कदर शक की निगाह से. देखा जाने लगा। खैर भाई, आखिर सच्चाई सतह पर आयेगी और इसी की फतह होगी।

---

1. पत्र में रेखांकित शब्द लिखकर काट गये हैं।

✿✿

स्वर्गीय लाला लाजपतराय पर डंडे बरसाने वाले डी.एस.पी. सांडर्स की हत्या भगतसिंह और राजगुरु ने लाहौर में पुलिस स्टेशन के सामने 17 दिसम्बर, 1928 को दिन-दहाड़े की। दूसरे दिन सुबह भगतसिंह और साथियों द्वारा तैयार किया यह पोस्टर दीवारों पर लगा मिला :

# हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना नोटिस : नौकरशाही सावधान

जे.पी. सांडर्स की मृत्यु से लाला लाजपतराय जी की हत्या का बदला ले लिया गया।

यह सोचकर कितना दुःख होता है कि जे.पी. सांडर्स जैसे एक मामूली पुलिस अफसर के कमीने हाथों देश की तीस करोड़ जनता द्वारा सम्मानित एक नेता पर हमला करके उनके प्राण ले लिए गए। राष्ट्र का अपमान हिन्दुस्तानी नवयुवकों और मर्दो को चुनौती थी।

आज संसार ने देख लिया है कि हिन्दुस्तान की जनता निष्प्राण नहीं हो गई है। हिन्दुस्तानियों का खून जम नहीं गया, बे अपने राष्ट्र के सम्मान के लिए प्राणों की बाज़ी लगा सकते हैं। यह प्रमाण देश के उन युवकों ने दिया है, जिनकी इस देश के नेता निन्दा और अपमान करते हैं।

# अत्याचारी सरकार सावधान

इस देश की दलित और पीड़ित जनता की भावनाओं को ठेस मत लगाओ। अपनी शैतानी हरकतें बन्द करो। हिन्दुस्तानियों को हथियार न रखने देने के लिए बनाये तुम्हारे सब कानूनों और चौकसी के बावजूद पिस्तौल और रिवाल्वर इस देश की जनता के हाथ आते ही रहेंगे। यदि ये हथियार सशस्त्र क्रान्ति के लिए पर्याप्त न भी हुए, तो भी राष्ट्रीय अपमान का बदला लेते रहने के लिए तो काफी रहेंगे ही। हमारे अपने लोग हमारी निन्दा और अपमान न करें। विदेशी सरकार चाहे हमारा कितना भी दमन कर ले, परन्तु हम राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा करने और विदेशी अत्याचारियों को सबक सिखाने के लिए सदा तत्पर रहेंगे। विरोध और दमन के बावजूद क्रान्ति की पुकार को बुलन्द रखेंगे और फांसी के तख्तों से भी पुकारते रहेंगे—

इन्कलाब जिन्दाबाद!

हमें एक आदमी की हत्या करने का खेद है, परन्तु यह आदमी उस निर्दयी, नीच और अन्यायपूर्ण व्यवस्था का अंग था, जिसे समाप्त कर देना आवश्यक है। इस आदमी की हत्या हिन्दुस्तान में बिटिश शासन के कारिन्दे के रूप में की गई है। यह सरकार सबसे अत्याचारी

सरकार है।

मनुष्य का रक्त बहाने के लिए हमें खेद है, परन्तु क्रान्ति की वेदी पर रक्त बहाना कभी-कभी अनिवार्य हो जाता है। हमारा उद्देश्य ऐसी क्रान्ति से है, जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त कर देगी।

ह. बलराज<br>
सेनापति, पंजाब हिसप्रस

18 दिसम्बर, 1928

✿✿

सुखदेव और भगतसिंह अभिन्न साथी थे। उनकी मित्रता का आधार दोनों की अध्ययन-शीलता थी। दोनों खूब पढ़ते थे, खूब सोचते थे, खूब काम करते थे। सुखदेव की संगठन-शक्ति अद्‌भुत थी, पर उनमें मानसिक स्थिरता की कमी थी और स्वप्निल आदर्शवाद का अतिरेक था। शायद यह कहना ठीक होगा कि वे एक मूडी आदमी थे।

एक दिन पार्टी की मीटिंग में एक क्रान्तिकारिणी महिला आई। भगतसिंह उन्हें देखकर मुस्कराये, वे भगतसिंह को देखकर मुस्कराई। सुखदेव ने इसका गलत अर्थ लगाया। वे जब-तब नर-नारी के संबंधों पर भगतसिंह से बहस करते रहते थे।

उस दिन जब क्रान्तिकारी दल ने यह कहकर कि दल के लिए भगतसिंह की अनिवार्य आवश्यकता है, असेम्बली में बम फैंकने के लिए भगतसिंह की जगह दूसरा नाम पास कर दिया, तो भगतसिंह अनुशासन के भाव से चुप रह गए। सुखदेव मीटिंग में नहीं थे। बाहर से आते ही वे गुस्से में भरे भगतसिंह के पास पहुंचे और उन्हें बहुत कुछ कहने के बाद यह भी कहा कि तुम उस औरत से प्यार की वजह से ही बच रहे हो।

भगतसिंह ने गुस्से में सुखदेव को झिड़क दिया और दुबारा दल की मीटिंग बुलाकर जिद करके अपना नाम रखाया। 18 अप्रैल, 1929 को असेम्बली में बम फेंकने के लिए जाने से पहले भगतसिंह ने सुखदेव को यह विचारपूर्ण पत्र लिखा।

प्रिय भाई,

जैसे ही यह पत्र तुम्हें मिलेगा, मैं जा चुका हूंगा—दूर एक मंजिल की ओर। मैं तुम्हें विश्वास दिलाना चाहता हूं कि मैं आज बहुत खुश हूं, हमेशा से ज्यादा। मैं यात्रा के लिए तैयार हूं। अनेक-अनेक मधुर स्मृतियों के होते और अपने जीवन की सब खुशियों के होते भी एक बात मेरे मन में चुभती रही थी कि मेरे भाई, मेरे अपने भाई ने मुझे गलत समझा और मेरे ऊपर बहुत ही गंभीर आरोप लगाया—कमज़ोरी। आज मैं पूरी तरह संतुष्ट हूं, पहले से कहीं अधिक। आज मैं महसूस करता हूं कि वह बात कुछ भी नहीं थी, एक गलतफहमी थी, एक गलत अंदाज़ था। मेरे खुले व्यवहार को मेरा बातूनीपन समझा गया और मेरी आत्म स्वीकृति को मेरी कमज़ोरी। परन्तु अब मैं महसूस करता हूं कि कोई गलतफहमी नहीं, मैं कमजोर नहीं, अपनों में से किसी से भी कमज़ोर नहीं।

भाई, मैं साफ दिल से विदा हूंगा। क्या तुम भी साफ होगे? यह तुम्हारी बड़ी दयालुता होगी, लेकिन ख़याल रखना कि तुम्हें जल्दबाजी में कोई कदम नहीं उठाना चाहिए। गम्भीरता और शान्ति से तुम्हें काम को आगे बढ़ाना है। जल्दबाज़ी में मौका पा लेने का प्रयत्न न करना। जनता के प्रति तुम्हारा कुछ कर्तव्य है। उसे निभाते हुए काम को निरन्तर सावधानी से करते रहना।

सलाह के तौर पर मैं कहना चाहूंगा कि शास्त्री मुझे पहले से ज्यादा अच्छे लग रहे हैं। मैं उन्हें मैदान में लाने की कोशिश करूंगा; बशर्ते कि वे स्वेच्छा से, और साफ-साफ बात यह है कि, निश्चित रूप से एक अंधेरे भविष्य के प्रति समर्पित होने को तैयार हों। उन्हें दूसरे लोगों के साथ मिलने दो और उनके हाव-भाव का अध्ययन होने दो। यदि वे ठीक भावना से

अपना काम करेंगे तो उपयोगी और बहुत मूल्यवान् सिद्ध होंगे। लेकिन जल्दी न करना। तुम्हीं स्वयं अच्छे निर्णायक होगे। जैसे सुविधा हो, व्यवस्था करो। आओ भाई, अब हम बहुत खुश हो लें।

खुशी के इस वातावरण में मैं कह सकता हूं कि जिस प्रश्न पर हमारी बहस है, उसमें अपना पक्ष लिए बिना रह नहीं सकता। मैं पूरे ज़ोर से कहता हूं कि मैं आकांक्षाओं और आशाओं से भरपूर हूं और जीवन की आनन्दमय रंगीनियों से ओत-प्रोत हूं, पर आवश्यकता के समय पर सब कुछ कुर्बान कर सकता हूं और यही वास्तविक बलिदान है। ये चीजें कभी मनुष्य के रास्ते में रुकावट नहीं बन सकतीं, बशर्ते कि वह मनुष्य हो। निकट भविष्य में ही तुम्हें प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाएगा।

किसी व्यक्ति के चरित्र के बारे में बातचीत करते हुए एक बात सोचनी चाहिए कि क्या प्यार कभी किसी मनुष्य के लिए सहायक सिद्ध हुआ है? मैं आज इस प्रश्न का उत्तर देता हूं-हां, यह मेज़िनी था। तुमने अवश्य ही पढ़ा होगा कि अपनी पहली विद्रोही असफलता, मन को कुचल डालने वाली हार, मरे हुए साथियों की याद वह बर्दाश्त नहीं कर सकता था। यह पागल हो आता या आत्महत्या कर लेता, लेकिन अपनी प्रेमिका के एक ही पत्र से वह, यही नहीं कि किसी एक से मज़बूत हो गया, बल्कि सबसे अधिक मजबूत हो गया।

जहां तक प्यार के नैतिक स्तर का सम्बन्ध है, मैं यह कह सकता हूं कि यह अपने में कुछ नहीं है, सिवाय एक आवेश के, लेकिन यह पाशविक वृत्ति नहीं, एक मानवीय, अत्यन्त मधुर भावना है। प्यार अपने में कभी भी पाशविक वृत्ति नहीं है। प्यार तो हमेशा मनुष्य के चरित्र को ऊंचा उठाता है, यह कभी भी उसे नीचा नहीं करता, बशर्ते कि प्यार-प्यार हो। तुम कभी भी इन लड़कियों को वैसी पागल नहीं कह सकते, जैसे कि फिल्मों में हम प्रेमियों को देखते हैं। ये सदा पाशविक वृत्तियों के हाथों खेलती हैं। सच्चा प्यार कभी भी गढ़ा नहीं जा सकता। यह अपने ही मार्ग से आता है। कोई नहीं कह सकता कब?

हां, मैं यह कह सकता हूं कि एक युवक, एक युवती आपस में प्यार कर सकते हैं और वे अपने प्यार के सहारे अपने आवेगों से ऊपर उठ सकते हैं, अपनी पवित्रता बनाए रख सकते हैं। मैं यहां एक बात साफ कर देना चाहता हूं कि जब मैंने कहा था कि प्यार इंसानी कमज़ोरी है, तो यह एक साधारण आदमी के लिए नहीं कहा था, जिस स्तर पर कि आम आदमी होते हैं। यह एक अत्यन्त आदर्श स्थिति है, जहां मनुष्य प्यार-घृणा आदि के आवेगों पर काबू पा लेगा, जब मनुष्य अपने कार्यों का आधार आत्मा के निर्देश को बना लेगा, लेकिन आधुनिक समय में यह कोई बुराई नहीं है, बल्कि मनुष्य के लिए अच्छा और लाभदायक है। मैंने एक आदमी के एक आदमी से प्यार की निंदा की है, पर वह भी एक आदर्श स्तर पर। इसके होते हुए भी मनुष्य में प्यार की गहरी भावना होनी चाहिए, जिसे कि वह एक ही आदमी में सीमित न कर दे बल्कि विश्वमय रखे।

मैं सोचता हूं, मैंने अपनी स्थिति अब स्पष्ट कर दी है। एक बात मैं तुम्हें बताना चाहता हूं कि क्रान्तिकारी विचारों के होते हुए हम नैतिकता के सम्बन्ध में आर्यसमाजी ढंग की कट्टर धारणा नहीं अपना सकते। हम बढ़-चढ़कर बात कर सकते हैं और इसे आसानी से छिपा सकते हैं, पर असल जिंदगी में हम झट थर-थर कांपना शुरू कर देते हैं।

मैं तुम्हें कहूंगा कि यह छोड़ दो। क्या मैं अपने मन में बिना किसी गलत अन्दाज़ के गहरी नम्रता के साथ निवेदन कर सकता हूं कि तुममें जो अति आदर्शवाद है, उसे ज़रा कम कर दो। और उनकी तरफ से तीखे न रही, जो पीछे रहेंगे और मेरे जैसी बीमारी का शिकार होंगे। उनकी भर्त्सना कर उनके दुखों-तकलीफों को न बढ़ाना। उन्हें तुम्हारी सहानुभूति की आवश्यकता है।

क्या मैं यह आशा कर सकता हूं कि किसी खास व्यक्ति से द्वेष रखे बिना तुम उनके साथ हमदर्दी करोगे, जिन्हें इसकी सबसे अधिक ज़रूरत है? लेकिन तुम तब तक इन बातों को नहीं समझ सकते, जब तक कि तुम स्वयं उस चीज़ का शिकार न बनो। मैं यह सब क्यों लिख रहा हूं! मैं बिल्कुल स्पष्ट होना चाहता था। मैंने अपना दिल साफ कर दिया है।

तुम्हारी हर सफलता और प्रसन्न जीवन की कामना सहित—

तुम्हारा भाई
भगतसिंह

✿✿

8 अप्रैल, 1929 को भगतसिंह ने असेम्बली में दो बम फेंके। उसी समय उनके साथी श्री बटुकेश्वर दत्त ने भगतसिंह के लिखे इस पर्चे की कुछ प्रतियां हाल में फेंकी:

# हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना सूचना

"बहरों को सुनाने बेर लिए धमाका करना जरूरी है।' प्रसिद्ध फ्रांसीसी अराजकतावादी शहीद वेलां के यह अमर शब्द हमारे काम के औचित्य के साक्षी हैं। गत दस वर्षों में प्रशासनिक सुधरों की ओट में जो कुछ किया गया है, उस अपमानजनक निंदनीय कहानी को हम दोहराना नहीं चाहते। हम भारतीय राष्ट्र के नेताओं के साथ किये गए अपमानों का भी उल्लेख नहीं करना चाहते, जो इस सदन में किये गए हैं, जिसे भारतीय पार्लियामेंट कहा जाता है।

हम स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस समय भी कुछ लोग साइमन कमीशन के द्वारा सुधारों के नाम पर जो जूठन मिलने की संभावना है, उसकी आशा लगाए हुए हैं और चिचोड़ी हुई हड्डियों के बंटवारे के लिए झगड़ा तक करने लग गए हैं। इसी समय सरकार भी भारतीय जनता पर दमनकारी कानून लादती जा रही है, जैसे कि सार्वजनिक सुरक्षा' (पब्लिक सेफ्टी बिल) और 'औद्योगिक विवाद' (ट्रेड डिसप्यूट बिल) इसके साथ ही आने वाले अधिवेशन में 'अखबारों द्वारा राजद्रोह रोकने का कानून' (प्रेस सडीशन एक्ट) जनता पर कस दिये जाने की भी धमकी दी जा रही है। मजदूर नेता जो खुले रूप में 'अपना कार्य कर रहे थे, उनकी अंधा-धुंध गिरफ्तारियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार का इरादा क्या है।

इस अत्यन्त उत्तेजनात्मक परिस्थितियों में हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ) ने पूर्ण गंभीरता के साथ अपना पूरा उत्तरदायित्व अनुभव करते हुए यह निश्चय किया है और अपनी सेना को आदेश दिया है जिससे कानून का यह अपमानजनक मज़ाक बन्द हो। विदेशी सरकार और उसके शोषक नौकरशाह, जो कुछ भी उनके मन में आये करें, लेकिन हमारा यह कर्तव्य है कि जनसाधारण के सामने विदेशी सरकार के काले कारनामों का सही चित्र प्रस्तुत करते रहें।

जनता के प्रतिनिधियों का यह सबसे पहला कर्तव्य है कि वे अपने-अपने क्षेत्रों का दौरा कर जनता-जनार्दन को आने वाली क्रान्ति के लिए तैयार करें। भारतीय जनता अपने सशक्त विरोध द्वारा अन्याय पर टिकी हुई हत्यारी ब्रिटिश सरकार को यह बता दे कि पब्लिक सेफ्टी बिल, ट्रेड डिसप्यूट बिल और लाला लाजपतराय की नृशंस हत्या हमारे मार्ग से. स्वाधीनता के पवित्र संकल्प से नहीं डिगा सकती।

हम अपने इस विश्वास को पुन: दोहराना चाहते हैं कि संसार के इतिहास ने अनेक बार इस ज्वलंत सच्चाई की घोषणा की है कि व्यक्तियों की हत्या करना तो सरल है, किन्तु

विचारों की हत्या नहीं की जा सकती।

बड़े-बड़े साम्राज्य नष्ट हो गए, पर विचार आज भी जीवित हैं। फ्रांस के ब्रुवां और रूस के ज़ार, सब चले गए, जबकि क्रान्तिकारी विजय की सफलता के साथ आगे बढ़ गये।

हमें यह स्वीकार करते हुए खेद होता है कि हम लोग, जो मनुष्य जीवन को अत्यन्त पवित्र मानते हैं, हम जो बड़े उज्जवल भविष्य के स्वप्न देखते हैं, जिसमें मनुष्य पूर्ण शान्ति और स्वतंत्रता का उपभोग करता होगा, उन्हें भी मानव-रक्त बहाना पड़ा है।

क्रान्ति की देवी का अभिषेक करने के लिए, जो सबको स्वतंत्रता प्रदान करेगी, कुछ व्यक्तियों का बलिदान होना आवश्यक है। तभी मनुष्य के द्वारा मनुष्य का शोषण असंभव हो सकेगा।

क्रान्ति चिरंजीव हो।

ह. बलराज
'कमांडर इन-चीफ'

✿✿

असेम्बली बमकांड में गिरफ्तारी के बाद भगतसिंह ने दिल्ली जेल से अपने पिता सरदार किशनसिंह (लाहौर) को यह पहला पत्र लिखा :

दिल्ली जेल
26 अप्रैल, 1929

पूज्य पिता जी महाराज

वन्दे मातरम

अर्ज़ यह है कि हम लोग 22 अप्रैल को पुलिस की हवालात से दिल्ली जेल में मुन्तकिल (तब्दील) कर दिए गए थे और इस वक्त दिल्ली जेल में ही हैं। मुकदमा 7 मई को जेल के अन्दर ही शुरू होगा। गालिबन (संभवत) एक माह में सारा ड्रामा खत्म हो जाएगा। ज्यादा फिक्र करने की ज़रूरत नहीं है। मुझे मालूम हुआ कि आप यहां तशरीफ लाए थे और किसी वकील वगैरह से बातचीत की थी और मुझसे मिलने की कोशिश भी की थी, मगर तब सब इन्तजाम न हो सका। कपड़े मुझे परसों मिले। मुलाकात आप जिस दिन तशरीफ लाएं, हो सकेगी। वकील वगैरह की कोई खास ज़रूरत नहीं है। दो-एक आमूद पर थोड़ा-सा मशवरा लेना चाहता हूं। मगर यह कोई खास अहमियत नहीं रखते। आप ख्वाहमख्वाह ज्यादा तकलीफ न कीजिएगा। अगर आप मिलने के लिए आएं तो अकेले आइएगा। वालदा साहिबा (माताजी) को साथ न लाइएगा। ख्वाहमख्वाह वो रो देंगी और मुझे भी कुछ तकलीफ ज़रूर होगी। घर के सब हालात आप से मिलने पर ही मालूम हो सकेंगे।

हां, अगर हो सके तो गीता रहस्य, नैपोलियन की मोटी सुआने-उमरी (जीवन चरित्र) जो आपको मेरी कुतब में मिल जाएंगी, अंग्रेज़ी के कुछ आला नावेल लेते आइएगा। वालदा साहिबा, भाभी साहिबा, माता जी (दादी जी) और चाची साहिबा के चरणों में नमस्कार। रणबीरसिंह और कुलतारसिंह को नमस्ते। बापू जी (दादा जी) के चरणों में नमस्ते अर्ज़ कर दीजिएगा। इस वक्त पुलिस-हवालात और जेल में हमारे साथ निहायत अच्छा सलूक हो रहा है। आप किसी किस्म की फिक्र न कीजिएगा। मुझे आपका एड्रेस मालूम नहीं है, इसलिए इस पते (कांग्रेस दफ्तर) पर लिख रहा हूं।

आपका ताबेदार
भगतसिंह

✡✡

असेम्बली बम केस की सुनवाई दिल्ली के सेशन जज की अदालत में 7 मई, 1929 को प्रारंभ हुई और 6 जून, 1929 को भगतसिंह ने यह बयान दिया :

# हमने बम क्यों फेंके?

हमारे विरुद्ध गम्भीर अपराधों के आरोप लगाए गए हैं, हम इस समय अपने आचरण का स्पष्टीकरण करना चाहते हैं।

इस सन्दर्भ में निम्न प्रश्न उठते हैं :

1. क्या सदन में बम फेंके गए थे? यदि ऐसा हुआ तो इसका क्या कारण था?

2. निम्न न्यायालय ने जिस प्रकार आरोप लगाया है वह सही है अथवा नहीं?

प्रथम प्रश्न के पूर्वार्द्ध के लिए हमास उत्तर स्वीकारात्मक है, परन्तु कुछ साक्षियों ने घटना का असत्य विवरण प्रस्तुत किया है। हम बम फेंकने का दायित्व स्वीकार करते हैं। अतः हम यह अपेक्षा करते हैं कि हमारे इस वक्तव्य का सही मूल्यांकन किया जा सकेगा। उदाहरणार्थ, हम इस बात की ओर संकेत करना चाहते है कि सार्जेण्ट टेरी का यह कथन जान-बूझकर बोला गया असत्य है कि उन्होंने हममें से एक के हाथ से पिस्तौल छीनी। वस्तुत: जिस समय हमने आत्म-समर्पण किया, उस समय हम दोनों में से किसी के पास पिस्तौल नहीं थी। जिन साथियों ने यह कहा कि उन्होंने हमें बम फेंकते हुए देखा, उन्हें भी बेसिर-पैर का झूठ बोलने में कोई झिझक नहीं आई। हमें आशा है कि जिन लोगों का ध्येय न्यायिक शुद्धता तथा निष्पक्षता की रक्षा करना है वे इन तथ्यों से स्वयं निष्कर्ष निकालेंगे। साथ ही हम स्वीकार करते हैं कि अभी तक सरकारी पक्ष ने औचित्य की रक्षा की है तथा न्यायालय ने न्यायपूर्ण रवैया अपनाए रखा है।

प्रथम प्रश्न के उत्तरार्द्ध का उत्तर कुछ विस्तार में देना होगा, जिससे कि हम इन प्रयोजनों और परिस्थितियों को एक पूर्ण और खुले रूप में स्पष्ट कर सकें, जिनके परिणामस्वरूप वह घटना हुई है जिसने अब ऐतिहासिक स्वरूप ले लिया है। जेल में हमारे साथ जिन पुलिस अधिकारियों ने भेंट की उनमें से कुछ ने यब हमें यह बताया कि विचाराधीन घटना के पश्चात् दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए लार्ड इरविन ने यह कहा है कि हम लोगों ने बम फेंककर किसी व्यक्ति पर नहीं, वरन स्वयं एक संविधान पर आक्रमण किया है, उस समय हमें तुरंत यह आभास हुआ कि उस घटना के वास्तविक महत्व का सही मूल्यांकन किया गया है।

मानव मात्र के प्रति हमारा प्रेम किसी से भी कम नहीं है, अत. किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष रखने का प्रश्न ही नहीं उठता, इसके विपरीत हमारी दृष्टि में मानव जीवन इतना अधिक पवित्र है कि उस पवित्रता का वर्णन शब्दों में नहीं किया आ सकता। छद्म समाजवादी दीवान चमनलाल ने हमें जघन्य आक्रमणकारी और देश के लिए

अपमानकारक बताया है, यह सत्य नहीं है। साथ ही लाहौर के समाचारपत्र 'ट्रिब्यून' तथा कुछ अन्य लोगों की यह धारणा भी असत्य है कि हम उन्मत्त हैं।

हम नम्रतापूर्वक यह दावा करते हैं कि हमने इतिहास, अपने देश की परिस्थिति तथा मानवीय आकांक्षाओं का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया है एवं हम पाखण्ड से घृणा करते हैं।

हमारा ध्येय उस संस्था[1] के विरुद्ध व्यावहारिक प्रतिरोध प्रकट करना था, जिसने अपने आरंभ से केवल अपनी निरुपयोगिता का ही नहीं, वरन हानि पहुंचाने की दूरगामी शक्ति का भी नग्न प्रदर्शन किया है। हमने जितना अधिक चिन्तन किया, हम उतने ही अधिक इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि इस संस्था (केन्द्रीय असेम्बली) के अस्तित्व का प्रयोजन संसार के समक्ष भारतीय दीनता और असहायता का प्रदर्शन करना है तथा यह एक अनुत्तरदायी एवं स्वेच्छाचारी शासन की दमनकारी सत्ता की प्रतीक बन गई है।

जनता के प्रतिनिधियों की राष्ट्रीय मांग को बार-बार रद्दी की टोकरी में फेंक दिया जाता रहा है। सदन द्वारा पारित पवित्र प्रस्तावों को तथाकथित भारतीय संसद के फर्श पर निरादरपूर्वक पांवों तले कुचला जाता रहा है। दमनकारी एवं स्वेच्छाचारी कानूनों के निवारण से संबंधित प्रस्तावों की सबसे अपमानपूर्वक उपेक्षा की गई तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों ने जिन सरकारी कानूनों और प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया, उनको भी सरकार द्वारा स्वेच्छाचारितापूर्वक स्वीकृति प्रदान की जा रही है।

संक्षेप में ईमानदारी के साथ प्रयत्न करने पर भी हमारी समझ में यह नहीं आ सका है कि ऐसी संस्था का अस्तित्व किस प्रकार न्यायसंगत माना जा सकता है, जिसकी शान-शौकत बनाए रखने के लिए भारत के करोड़ों लोगों के गाढ़े पसीने की कमाई व्यय की जाती है और इसके बाद भी जो सारहीन अभिनय और शैतानी से भरा षड़यंत्र मात्र बनकर रह गई है।

इसी प्रकार हम उन नेताओं की मनोवृति के औचित्य को नहीं समझ पा रहे हैं, जो भारत की इस असहाय पराधीनता के पूर्व-नियोजित प्रदर्शन पर सार्वजनिक समय और धन नष्ट कर रहे हैं। हम इस विषय में तथा रेड डिस्प्यूट विधेयक प्रस्तुत किए जाने के समय श्रमिक आन्दोलन के नेताओं की व्यापक गिरफ्तारियों पर गंभीरता से चिन्तन करते रहे हैं और जब इस विषय पर होने वाले विवाद की आँखों देखी जानकारी प्राप्त करने के लिए हम असेम्बली में आए, तो हमारी यह धारणा और भी पुष्ट हो गई कि भारत के करोड़ों मेहनतकशों को एक ऐसी संस्था से कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता जो शोषकों की दम घोंटने वाली सत्ता और असहाय श्रमिकों की पराधीनता का एक खतरनाक स्मारक मात्र बनकर रह गई है।

अन्ततः, समूचे देश के प्रतिनिधियों को इस प्रकार अपमानित किया गया है, जिसे हम अमानवीय और बर्बर कहते हैं। साथ ही देश के करोड़ों भूखे तथा दरिद्र लोगों को उनके मौलिक अधिकारों तथा आर्थिक हित के एकमात्र साधन से वंचित कर दिया गया है।

कोई नई ऐसा व्यक्ति जिसके ह्लदय में मूक और पराधीन श्रमिकों की दुर्दशा के प्रति हमारे जैसी सहानुभूति है इस, दृश्य को शान्तिपूर्वक नहीं देख सकता और जिसके ह्लदय में उन श्रमिकों के लिए करुणा है, जिन्होंने उन शोषकों के आर्थिक ढांचे के निर्माण के लिए मौन रहकर अपना जीवन-रक्त गिराया है, जिनकी यह सरकार सबसे अधिक समर्थक है,

निर्दय निर्दलन के फलस्वरूप उठने वाले आत्मा के क्रन्दन को दबा नहीं सकता। परिणामतया हमने गवर्नर-जनरल की कार्यकारी परिषद् के भूतपूर्व विधि सदस्य स्वर्गीय श्री आर.एस.दास के उन शब्दों से प्रेरणा ग्रहण की, जो उन्होंने अपने पुत्र के नाम एक पत्र में लिखे थे और जिनका तात्पर्य यह था कि इंग्लैंड को उसके दुस्वप्न से जगाने के लिए बम आवश्यक है। और हमने उन लोगों की ओर से प्रतिरोध प्रकट करने के लिए असेम्बली के फर्श पर बम फेंका, जिनके पास अपनी हृदयविदारक व्यथा की अभिव्यक्ति का कोई दूसरा मार्ग नहीं रह गया है। हमारा एकमात्र ध्येय यह था कि हम बहरों को अपनी आवाज सुनाएं और समय की चेतावनी उन लोगों तक पहुंचाएं .जो उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। दूसरे लोग भी हमारी ही तरह सोच रहे हैं और यद्यपि भारतीय जाति ऊपर से एक शांत समुद्र की भांति दिखाई दे रही है तथापि भीतर-ही-भीतर एक भयंकर तूफान उफन रहा है। हमने उन लोगों को खतरे की चेतना दी है जो सामने आने वाली गंभीर परिस्थितियों की चिन्ता किए बिना सरपट दौड़े जा रहे हैं। हमने उस काल्पनिक अहिंसा की समाप्ति की घोषणा की है, जिसकी निरुपयोगिता के बारे में नई पीढ़ी के मन में किसी प्रकार का सन्देह नहीं बचा है। हमने ईमानदारीपूर्ण सद्भावना तथा मानव जाति के प्रति अपने प्रेम के कारण उन भयंकर खतरों के विरुद्ध चेतावनी देने के लिए यह मार्ग चुना है, जिनका पूर्वाभास हमें भी देश के करोड़ों लोगों की भांति स्पष्ट रूप से हुआ है।

हमने पिछले पैरा में काल्पनिक अहिंसा शब्द का प्रयोग किया है। हम इसकी व्याख्या करना चाहते हैं। हमारी दृष्टि से बल-प्रयोग उस समय अन्यायपूर्ण होता है, जब वह आक्रामक रीति से किया जाए और यह हमारी दृष्टि में हिंसा है, परन्तु जब शक्ति का उपयोग किसी विहित (समाज-सम्मत) उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाये, तो वह नैतिक दृष्टि से न्याय-संगत हो जाता है। बल-प्रयोग का पूर्ग बहिष्कार कोरी काल्पनिक भ्रांति है। इस देश में एक नया आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है, जिसकी पूर्व सूचना हम दे चुके हैं। यह आन्दोलन गुरु गोविन्दसिंह और शिवाजी, कमालपाशा और रजा खां, वाशिंगटन और गैरीबाल्डी तथा लाफायेते और लेनिन के कार्यो से प्रेरणा ग्रहण करता है।

हमें ऐसा लगा कि विदेशी सरकार और भारत के सार्वजनिक नेताओं ने इस आन्दोलन की ओर से आखें मूंद ली हैं तथा उनके कानों में इसकी आवाज नहीं पड़ रही है, अत: हमें यह कर्तव्य प्रतीत हुआ कि हम ऐसे स्थान पर चेतावनी दें जहां हमारी आवाज अनसुनी न रह सके।

हमने अभी तक विचाराधीन धटना के पीछे निहित प्रयोजनों की चर्चा की है; अब हम अपने प्रयोजनों की मर्यादा के बारे में भी कुछ कहना चाहते हैं।

हमारे मन में उन लोगों के प्रति कोई व्यक्तिगत द्वेष अथवा वैर नहीं था, जिनको इस घटना के दौरान मामूली चोटें आई हैं। इतना ही नहीं, असेम्बली में उपस्थित किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध हमें कोई व्यक्तिगत द्वेष नहीं था। हम तो यहां तक कह सकते हैं कि हम मानवीय जीवन को शब्दातीत रूप में पवित्र मानते हैं तथा किसी को चोट पहुंचाने के बजाय मानव जाति की सेवा के लिए हम अपने प्राण देने को तत्पर हैं। हम साम्राज्यवादी सेनाओं के उन भड़ैत सैनिकों की भांति नहीं हैं, जो हत्या करने में रस लेते हैं। इसके विपरीत हम मानव जीवन की रक्षा करने का प्रयत्न करेंगे। इसके बावजूद भी हम स्वीकार

करते हैं कि हमने जान-जूझकर असेम्बली भवन में बम फेंके। तथ्य स्वयं मुखर है तथा हमारा अनुरोध है कि हमोर प्रयोजनों को हमारे कार्य के परिणाम से आंका जाना चाहिए, न कि काल्पनिक परिस्थितियों तथा पूर्वमान्यताओं के आधार पर। सरकारी विशेषज्ञ द्वारा दिये गये प्रमाणों के बावजूद सत्य यह है कि हमने असेम्बली भवन में जो बम फेंके उनसे एक खाली बेंच को मामूली क्षति पहुंची और आधा दर्जन से भी कम लोगों को मामूली खरोचें आई। सरकार के वैज्ञानिकों ने इसे एक चमत्कार कहा है, परन्तु हमारी दृष्टि में यह पूर्णतया एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। पहली बात तो यह कि दो बम डेस्कों और बेंचों के बीच की खाली जगह में फटे, दूसरी यह कि जो लोग विस्फोट से केवल दो फुट दूर पर थे, जैसे श्री राउ, श्री शंकरराव तथा श्री जार्ज शुस्टर, उन लोगों को या तो बिल्कुल ही चोट नहीं आई या केवल कुछ खरोंचें आयीं। यदि बमों के भीतर पोटेशियम क्लोरेट और पिकरेट के प्रभावशाली तत्त्व भरे होते तो उन्होंने लकड़ी के अवरोधों को खण्डित कर दिया होता तथा विस्फोट स्थल से कई गज़ की दूरी पर बैठे बहुत-से लोग आहत हो गये होते। यदि उनके भीतर उससे भी अधिक प्रभावशाली विस्फोटक तथा विनाशकारी तत्त्व भरे होते, तो वे केन्द्रीय असेम्बली के अधिकांश सदस्यों की जीवन लीला ही समाप्त कर सकते थे। हम यह भी कर सकते थे कि हम उन्हें सरकारी बाक्स में फेंकते, जहां महत्वपूर्ण लोग बैठे थे। आखिरकार हम यह भी कर सकते थे कि उस समय अध्यक्ष-दीर्घा में बैठे हुए सर जान साइमन पर चोट करते, जिसके दुर्भाग्यपूर्णा कमीशन को देश के सभी विवेकवान लोग घृणा करते हैं, परन्तु हमारा प्रयोजन यह सब नहीं था और बमों का जिस प्रयोजन के लिए निर्माण किया गया था, उन्होंने उससे अधिक काम नहीं किया। इसमें कोई चमत्कार नही था, हमने जान-बूझकर यह ध्येय निश्चित किया था कि सभी लोगों का जीवन सुरक्षित रहे।

इसके पश्चात् हमने अपने कार्य के परिणामस्वरूप दण्ड प्राप्त करने के लिए स्वेच्छा से अपने-आपको प्रस्तुत कर दिया और साम्राज्यवादी शोषकों को यह बता दिया कि वे व्यक्तियों को कुचल सकते हैं, विचारों की हत्या नहीं कर सकते। दो महत्त्वहीन इकाइयों को कुचल देने से राष्ट्र नहीं कुचला जा सकता। हम इस ऐतिहासिक निष्कर्ष पर बल देना चाहते हैं कि फ्रांस में लेटर्स डे, केटचेट तथा बेस्टाइल्स की घटनाओं से क्रान्तिकारी आन्दोलन को नहीं कुचला जा सका। फांसी की रस्सी और साइबेरिया में बिछाई गई सुरंग रूसी क्रान्ति की ज्वाला को नहीं बुझा सकी। इसी प्रकार यह भी असंभव है कि अध्यादेश और सुरक्षा विधेयक भारतीय स्वाधीनता की लपटों को बुझा सकें। षड्यंत्रों का भेद खोजने, उनकी जोरदार शब्दों में निन्दा करने तथा महत्तर आदर्शों का स्वप्न देखने वाले सभी नौजवानों को फांसी के तख्ते पर चढ़ा देने से क्रान्ति की गति अवरुद्ध नहीं की जा सकती। यदि हमारी इस चेतावनी की उपेक्षा नहीं की गई, तो यह जीवन की हानि और व्यापक उत्पीड़न को रोकने में सहायक सिद्ध हो सकती है। यह चेतावनी देने का भार हमने स्वयं अपने कन्धों पर लिया और अपने कर्तव्य का पालन किया।

निम्न न्यायालय में भगतसिंह से पूछा गया था कि वे क्रान्ति से क्या समझते हैं? प्रश्न के उत्तर में हमें यह कहना है कि क्रान्ति में घातक संघर्षों का अनिवार्य स्थान नहीं है, न उसमें व्यक्तिगत रूप से प्रतिशोध लेने की ही गुंजाइश है। क्रान्ति बम और पिस्तौल की संस्कृति नहीं है। क्रान्ति से हमारा प्रयोजन यह है कि अन्याय पर आधारित वर्तमान व्यवस्था में

परिवर्तन होना चाहिए। उत्पादक अथवा श्रमिक समाज के अत्यन्त आवश्यक तत्त्व हैं तथापि शोषक लोग उन्हें उनके श्रम के फलों और मौलिक अधिकारी से वंचित कर देते हैं। एक ओर सबके लिए अन्न उगाने वाले कृषक सपरिवार भूखों मर रहे हैं सारी दुनिया के बाजारों में कपड़े की पूर्ति करने वाले चुनकर अपने और अपने बच्चों के शरीर को ढांपने के लिए पूरे वस्त्र प्राप्त नहीं कर पाते, भवन-निर्माण, लोहारी और बढ़ईगिरी के कामों में लगे लोग शानदार महलों का निर्माण करके भी गन्दी बस्तियों में रहते और मर जाते हैं। दूसरी ओर पूंजीपति, शोषक और समाज पर घुन की तरह जीने वाले लोग अपनी सनक पूरी करने के लिए करोड़ों रुपये पानी की तरह बहा रहे हैं। ये भयंकर विषमताएं और विकास के अवसरों की कृत्रिम समानताएं समाज को अराजकता की ओर ले जा रही हैं। यह परिस्थिति सदा तक नहीं रह सकती तथा यह स्पष्ट है कि वर्तमान समाज-व्यवस्था एक ज्वालामुखी के मुख पर बैठी हुई आनन्द मना रही है और शोषकों के अबोध बच्चे भी करोड़ों शोषितों के बच्चों की भांति एक खतरनाक दरार के कगार पर खड़े हैं। यदि सभ्यता के ढांचे को समय रहते नहीं बचाया गया तो यह नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा, अत: क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है, और जो लोग इस आवश्यकता को अनुभव करते हैं, उनका यह कर्त्तव्य है कि वे समाज को समाजवादी आधारों पर पुनर्गठित करें। जब तक यह नहीं होगा और एक मनुष्य के द्वारा दूसरे मनुष्य का तथा एक राष्ट्र के द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण होता रहेगा, जिसे साम्राज्यवाद कहा जा सकता है, तब तक उससे उत्पन्न होने वाली पीड़ाओं और अपमानों से मानव जाति को नहीं बचाया जा सकता एवं युद्ध मिटाने तथा सार्वभौमिक शान्ति के युग का सूत्रपात करने के बारे में की जाने वाली समस्त चर्चाएं कोरा पाखण्ड हैं। क्रान्ति से हमारा प्रयोजन अन्तत: एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था करना है जिसको इस प्रकार के घातक खतरों का सामना न करना पडे और जिसमें सर्वहारा बर्ग की प्रभुता को मान्यता दी जाये। इसका परिणाम यह होगा कि विश्व संघ मानव जाति को पूंजीवाद के बन्धन तथा युद्ध से उत्पन्न होने बाली बरबादी और मुसीबतों से बचा सकेगा।

हमारा आदर्श यह है कि इस आदर्श से प्रेरणा ग्रहण करके हमने एक समुचित और काफी जोरदार चेतावनी दी है। यदि इसकी भी उपेक्षा कर दी जाती है तथा वर्तमान शासन-व्यवस्था नवोदित प्राकृतिक शक्तियों के मार्ग को अवरुद्ध करने का काम जारी रखती है तो एक भीषण संघर्ष उत्पन्न होना निश्चित है, जिसके परिणामस्वरूप समस्त बाधक तत्त्वों को उठाकर फेंक दिया जाएगा तथा सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य स्थापित होगा, जिससे क्रान्ति के लक्ष्य की उपलब्धि की जा सके। क्रान्ति मानव जाति का जन्मजात अधिकार है। स्वतन्त्रता सभी मनुष्यों का एक ऐसा जन्मसिद्ध अधिकार है जिसे किसी भी स्थिति में छीना नहीं जा सकता। श्रमिक वर्ग समाज का वास्तविक आधिकर है। लोक-प्रभुता की स्थापना श्रमिकों का अन्तिम ध्येय है। इन आदर्शो तथा इस अवस्था के लिए हम उन सब कष्टों का स्वागत करेंगे जो हमें न्यायालय द्वारा दिये जायें। क्रान्ति की इस वेदी पर हम अपना यौवन धूपबत्ती की भांति जलाने के लिए सम्बद्ध हुए हैं। इतने महान् ध्येय के लिए कोई भी बलिदान बड़ा नहीं माना जा सकता। हम क्रान्ति के उत्कर्ष की संतोषपूर्वक प्रतीक्षा करेंगे। इन्कलाब ज़िन्दाबाद।

1. उनका मतलब केन्द्रीय असेम्बली से है।

✡✡

दिल्ली के सेशन जज ने असेम्बली बम केस में भगतसिंह को आजन्म कारावास का दंड दिया। इसके तुरन्त बाद वे दिल्ली जेल से मियांवाली जेल भेज दिये गये, जिससे उन्हें भी सांडर्स वध केस के अभियुक्तों में सम्मिलित कर उन पर नया केस चलाया जा सके। उसी जेल से भगतसिंह ने पंजाब की जेलों के इन्सपेक्टर-जनरल के नाम 17 जून, 1929 को यह पत्र लिखा।

मियांवाली जेल
17 जून, 1929

सेवा में,
इन्सपेक्टर जनरल जेल,
पंजाब (जेल्स) लाहौर।

प्रिय महोदय,

इस सच्चाई के बावजूद कि सांडर्स शूटिग केस में गिरफ्तार दूसरे नौजवानों के साथ ही मुझ पर भी मुकदमा चलेगा, मुझे दिल्ली से मियांवाली जेल में बदल दिया गया है। उस केस की सुनवाई 20 जून, 1929 से शुरू होने वाली है। मैं यह समझने में सर्वथा असमर्थ रहा हूं कि मुझे यहां तब्दील करने के पीछे क्या भावना काम कर रही है।

जो भी हो, न्याय की मांग है कि हरेक अभियुक्त (अंडर ट्रायल) को वे सब सुविधाएं मिलनी चाहिए जिनसे वह अपने मुकदमे की तैयारी कर सके और लड़ सके। मैं यहां रहते कैसे अपना वकील नियुक्त कर सकता हूं? क्योंकि यहां रहते हुए मुझे अपने पिता या दूसरे रिश्तेदारों से सम्पर्क रखना कठिन है। यह स्थान काफी अलग-थलग है, रास्ता कठिन है और लाहौर से काफी दूर है।

मैं प्रार्थना करता हूं कि आप मुझे तुरन्त लाहौर सेंट्रल जेल में बदलने का आदेश दें, जिससे कि मुझे अपना केस लड़ने की तैयारी करने का उचित अवसर मिले। आशा है कि शीघ्र ध्यान दिया जायेगा।

आपका
भगतसिंह

✿✿

जेलें तब तक मनुष्य के साथ मनुष्य के राक्षसी व्यवहार के अड्डे बनी हुई थीं। इस राक्षसी व्यवहार का निजी अनुभव भगतसिंह दशहरा बम कांड में गिरफ्तारी के बाद लाहौर के किले में कर चुके थे। असेम्बली बमकांड में सजा होने पर भगतसिंह ने बटुकेश्वर दत्त के साथ इस राक्षसी अड्डे पर आक्रमण करने का संकल्प किया और दिल्ली जेल से मियांवाली जेल जाते समय रास्ते में ही भूख हड़ताल आरंभ कर दी। मियांवाली जेल से मुकदमे के लिए लाहौर जेल आने पर उन्होंने अपनी मांगों के सम्बन्ध में भारत सरकार के होम मेम्बर को यह पत्र लिखा :

सेन्ट्रल जेल लाहौर
24 जुलाई, 1929

श्रीमान् जी,

होम मेंबर भारत सरकार

हमें (भगतसिंह और बी.के. दत्त) 12 जून, 1929 को दिल्ली के असेम्बली बम केस में आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया गया। जब तक हम दिल्ली जेल में हवालाती कैदी (अंडर ट्रायल) रहे, हमारे साथ बड़ा अच्छा सलूक किया गया, पर जब से उस जेल से हमारी तब्दीली मियांवाली और लाहौर सेन्ट्रल जेल में हुई, तब से हमारे साथ इखलाकी कैदियों जैसा सलूक किया जा रहा है। पहले ही दिन हमने उच्च अधिकारियों से अच्छी खुराक तथा कुछ और सुविधाओं की मांग की और जेल की रोटी खाने से इनकार कर दिया। हमारी मांगें इस प्रकार थी-

1. राजनैतिक कैदी होने के नाते हमें अच्छा खाना दिया जाना चाहिए इसलिए हमारे भोजन का रूप यूरोपियन कैदियों जैसा होना चाहिए। हम उसी तरह की खुराक की मांग नहीं करते, बल्कि खुराक का स्तर वैसा चाहते हैं।
2. हमें मुशक्कत के नाम पर जेलों में सम्मानहीन काम करने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए।
3. बिना किसी रोक-टोक के पूर्व स्वीकृत (जिन्हें जेल अधिकारी स्वीकृत कर लें) पुस्तकें और लिखने का सामान लेने की सुविधा होनी चाहिए।
4. कम से कम एक दैनिक पत्र हरेक कैदी को मिलना चाहिए।
5. हरेक जेल में राजनैतिक कैदियों का एक विशेष वार्ड होना चाहिए जिसमें उन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति की सुविधा होनी चाहिए जो यूरोपियनों के लिए होती हैं और एक जेल में रहने वाले सभी राजनैतिक कैदी उस वार्ड में इकट्ठे रहने चाहिए।
6. स्नान के लिए सुविधायें मिलनी चाहिए।
7. अच्छे कपड़े मिलने चाहिए।

हमारी ये मांगें पूर्णतया उचित हैं, पर जेल अधिकारियों ने हमें एक दिन कहा कि उच्च अधिकारियों ने हमारी मांगें मानने से इनकार कर दिया है। इससे भी अधिक यह कि

ज़बरदस्ती खाना देने वाले हमारे साथ बड़ा बुरा सलूक करते हैं। 1 जून, 1929 को भगतसिंह ज़बरदस्ती खाना देने के पन्द्रह मिनट बाद तक पूरी तरह बेसुध पड़ा रहा। अत: हम यह निवेदन करते हैं कि बिना किसी ढील के यह दुर्व्यवहार बन्द किया जाना चाहिए।

इसके साथ ही हमें यूपी. जेल कमेटी में पंडित जगतनारायण और खान बहादुर हाफिज हिदायत हुसेन की सिफारिश की तरफ इशारा करने की आज्ञा दी जाये। उन्होंने यह सिफारिश की है कि राजनैतिक कैदियों के साथ अच्छी क्लास के कैदियों जैसा सलूक किया जाना चाहिए।

हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमारी मांगों की ओर ध्यान दिया जाए।

आपके<br>
भगतसिंह और बीके. दत्त

✿✿

19 अक्टूबर, 1929 को लाहौर में पंजाब छात्र संघ का दूसरा अधिवेशन नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस के सभापतित्व में हुआ। उसके लिए भगतसिंह ने अपनी और श्री बटुकेश्वर दत्त की तरफ से विद्यार्थियों के नाम यह सन्देश अपनी काल कोठरी से भेजा :

'इस समय हम नौजवानों से यह नहीं कह सकते कि वे बम और पिस्तौल उठायें। आज विद्यार्थियों के सामने इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण काम हैं। आने वाले लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस देश की आजादी के लिए जबरदस्त लड़ाई की घोषणा करने वाली है। राष्ट्रीय इतिहास के इन कठिन क्षणों में नौजवानों के कन्धों पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ेगी। यह सच है कि स्वतंत्रता के इस युद्ध में अग्रिम मोर्चों पर विद्यार्थियों ने मौत से टक्कर ली है। क्या परीक्षा के इस समय पर वे उसी प्रकार की दृढ़ता और आत्मविश्वास का परिचय देने से हिचकिचायेंगे नौजवानों को क्रान्ति का यह सन्देश देश के कोने-कोने में पहुंचाना है, फैक्टरी-कारखानों के क्षेत्रों में, गन्दी बस्तियों और गांवों की जर्जर झोपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रान्ति की अलख जगानी हे, जिससे आजादी आएगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असंभव हो जाएगा। पंजाब वैसे ही राजनीतिक तौर पर पिछड़ा हुआ माना जाता है। इसकी भी जिम्मेदारी युवक वर्ग पर ही है। आज वे देश के प्रति अपनी असीम श्रद्धा और शहीद यतीन्द्रनाथ दास के महान् बलिदान से प्रेरणा लेकर यह सिद्ध कर दें कि स्वतंत्रता के इस संघर्ष में वे दृढ़ता से टक्कर ले सकते हैं।'

✿✿

'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय ने अपनी एक सम्पादकीय टिप्पणी में 'भगतसिंह के नारे इन्कलाब ज़िन्दाबाद' को खून-खराबे और अराजकता का प्रतीक बताया। भगतसिंह ने 23 दिसम्बर, 1929 को अपनी और साथी बटुकेश्वर दत्त की तरफ से श्री चट्टोपाध्याय को यह पत्र लिखा :

# इन्कलाब ज़िन्दाबाद क्या है?

श्री सम्पादक जी,

'माडर्न रिव्यू'

आपने अपने सम्मानित पत्र के दिसम्बर, 1929 के अंक में एक टिप्पणी 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' के शीर्षक से लिखी है और इस नारे को निरर्थक ठहराने की चेष्टा की है। आप सरीखे परिपक्व विचारक तथा अनुभवी और यशस्वी सम्पादक की रचना में दोष निकालना तथा उसका प्रतिवाद करना, जिसे प्रत्येक भारतीय सम्मान की दृष्टि से देखता है, हमारे लिए एक बड़ी धृष्टता होगी। तो भी इस प्रश्न का उत्तर देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं कि इस नारे से हमारा क्या अभिप्राय है।

यह आवश्यक है, क्योंकि इस देश में इस समय इस नारे को सब लोगों तक पहुंचाने का कार्य हमारे हिस्से में आया है। इस नारे की रचना हमने नहीं की है। यही नारा रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन में प्रयोग किया गया है। प्रसिद्ध समाजवादी लेखक अप्टन सिंक्लेयर ने अपने उपन्यासों 'बोस्टन' और 'आईल' में यही नारा कुछ अराजकतावादी क्रान्तिकारी पात्रों के मुख से प्रयोग कराया है। इसका अर्थ क्या है? इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि सशस्त्र संघर्ष सदैव जारी रहे और कोई भी व्यवस्था अल्प समय के लिए भी स्थायी न रह सके, दूसरे शब्दों में देश और समाज में अराजकता फैली रहे।

दीर्घकाल से प्रयोग में आने के कारण इस नारे को एक ऐसी विशेष भावना प्राप्त हो चुकी है, जो संभव है कि भाषा के नियमों एवं कोष के आधार पर इसके शब्दों से उचित तर्कसम्मत रूप में सिद्ध न हो पाये, परन्तु इसके साथ ही इस नारे से उन विचारों को पृथक् नहीं किया जा सकता, जो इसके साथ जुड़े हुए हैं। ऐसे समस्त नारे एक ऐसे स्वीकृत अर्थ के द्योतक हैं, जो एक सीमा तक उनमें उत्पन्न हो गए हैं तथा एक सीमा तक उनमें निहित हैं।

उदाहरण के लिए हम यतीन्द्रनाथ ज़िन्दाबाद का नारा लगाते हैं। इससे हमारा तात्पर्य यह होता है कि उनके जीवन के महान् आदर्शों तथा उस अथक उत्साह को सदा-सदा के लिए बनाये रखें, जिसने इस महानतम बलिदानी को उस आदर्श के लिए अकथनीय कष्ट झेलने एवं असीम बलिदान करने की प्रेरणा दी। यह नारा लगाने से हमारी यह लालसा प्रकट होती है कि हम भी अपने आदर्शों के लिए ऐसे ही अचूक उत्साह को अपनायें। यही वह भावना है, जिसकी हम प्रशंसा करते हैं। इसी प्रकार हमें 'इन्कलाब' शब्द का अर्थ

भी कोरे शाब्दिक रूप में नहीं लगाना चाहिए। इस शब्द का उचित एवं अनुचित प्रयोग करने वाले लोगों के हितों के आधार पर इसके साथ विभिन्न अर्थ एवं विभिन्न विशेषतायें जोड़ी जाती हैं। क्रान्तिकारियों की दृष्टि में यह एक पवित्र वाक्य है। हमने इस बात को ट्रिब्यूनल के सम्मुख अपने वक्तव्य में स्पष्ट करने का प्रयास किया था।

इस वक्तव्य में हमने कहा था कि क्रान्ति (इन्कलाब) का अर्थ अनिवार्य रूप में सशस्त्र आन्दोलन नहीं होता। बम और पिस्तौल कभी-कभी क्रान्ति को सफल बनाने के साधन मात्र हो सकते हैं। इसमें भी सन्देह नहीं है कि कुछ आन्दोलनों में बम एवं पिस्तौल एक महत्त्वपूर्ण साधन सिद्ध होते हैं, परन्तु केवल इसी कारण से बम और पिस्तौल क्रान्ति के पर्यायवाची नहीं हो जाते। विद्रोह को क्रान्ति नहीं कहा जा सकता, यद्यपि यह हो सकता है कि विद्रोह का अन्तिम परिणाम क्रान्ति हो।

इस वाक्य में क्रान्ति शब्द का अर्थ 'प्रगति के लिए परिवर्तन की भावना एवं आकांक्षा' है। लोग साधारणतया जीवन की परंपरागत दशाओं के साथ चिपक जाते हैं और परिवर्तन के विचार मात्र से ही कांपने लगते हैं। यही एक अकर्मण्यता की भावना है, जिसके स्थान पर क्रान्तिकारी भावना जागृत करने की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अकर्मण्यता का वातावरण निर्माण हो जाता है और रूढ़िवादी शक्तियां मानव समाज को कुमार्ग पर ले जाती हैं। ये परिस्थितियां मानव समाज की उन्नति में गतिरोध का कारण बन जाती हैं।

क्रान्ति की इस भावना से मनुष्य जाति की आत्मा स्थायी तौर पर ओतप्रोत रहनी चाहिए। जिससे कि रूढ़िवादी शक्तियां मानव समाज की प्रगति की दौड़ में बाधा डालने के लिए संगठित न हो सकें। यह आवश्यक है कि पुरानी व्यवस्था सदैव रहे और वह नई व्यवस्था के लिए स्थान रिक्त करती रहे, जिससे कि एक आदर्श व्यवस्था संसार को बिगड़ने से रोक सके। यह है हमारा वह अभिप्राय जिसको हृदय में रखकर हम इन्कलाव 'ज़िन्दाबाद' का नारा ऊंचा करते हैं।

✿✿

दिल्ली के सेशन जज ने असेम्बली बम केस में भगतसिंह को आजन्म कारावास का दंड दिया था। लाहौर हाईकोर्ट में उसकी अपील की गई। दिल्ली अदालत के निर्णय की आलोचना करते हुए भगतसिंह ने हाईकोर्ट में यह दूसरा बयान दिया।

# हमारे उद्देश्य पर ध्यान दें

माई लार्ड,

हम न वकील हैं न अंग्रेजी के विशेषज्ञ है और न हमारे पास डिग्रियां ही हैं इसलिए हमसे शानदार भाषणों की आशा न की जाए। हमारी प्रार्थना है कि हमारे बयान की भाषा सम्बन्धी त्रुटियों पर ध्यान न देते हुए उसके वास्तविक अर्थ को समझने का प्रयत्न किया जाए। दूसरे तमाम मुद्दों (प्वांइन्ट्स) को अपने वकीलों पर छोड़ते हुए मैं स्वयं एक मुद्दे पर अपने विचार प्रकट करूंगा। यह मुद्दा इस मुकदमे में बहुत महत्वपूर्ण है। मुद्दा यह है कि हमारी नीयत क्या थी और हम किस हद तक अपराधी हैं।

यह बड़ा पेचीदा मामला है, इसलिए कोई व्यक्ति भी आपकी सेवा में विचारों के विकास की वह ऊंचाई प्रस्तुत नहीं कर सकता, जिसके प्रभाव में हम एक खास ढंग से सोचने और व्यवहार करने लगे थे। हम चाहते है कि इसे दृष्टि में रखते हुए ही हमारी नीयत और अपराध का अनुमान लगाया जाए। प्रसिद्ध कानून विशारद सालोमन के अनुसार किसी भी व्यक्ति को उसके अपराधी आचरण के लिए उस समय तक सजा नहीं मिलनी चाहिए जब तक उसका उद्देश्य कानून-विरोधी सिद्ध न हो।

मेशन जज की अदालत में हमने जो लिखित बयान दिया था, वह हमारे उद्देश्य की व्याख्या करता है और उस रूप में हमारी नीयत की व्याख्या भी करता था, लेकिन सेशन जज महोदय ने कलम की एक ही नोक से यह कहकर कि “आमतौर पर अपराध को व्यवहार में लाने वाली बात कानून के कार्य को प्रभावित नहीं करती और इस देश में कानूनी व्याख्याओं में कभी-कभार उद्देश्य और नीयत की चर्चा होती है” हमारी सब कोशिशें बेकार कर दीं।

माई लार्ड, इन परिस्थितियों में सुयोग्य सेशन जज को उचित था कि या तो अपराध का अनुमान परिणाम से लगाते या हमारे बयान की मदद से मनोवैज्ञानिक पहलु का फैसला करते, पर उन्होंने इन दोनों में से एक भी काम नहीं किया।

विचारणीय बात यह है कि असेम्बली में हमने जो दो बम फेंके, उनसे किसी भी व्यक्ति की शारीरिक या आर्थिक हानि नहीं हुई। इस दृष्टिकोण से हमें जो सजा दी गई है वह कठोरतम ही नहीं, बदला लेने की भावना वाली भी है। यदि दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाये तो जब तक अभियुक्ता कीं मनोभावना का पता न लगाया जाए उसके असली उद्देश्य का पता ही नहीं चल सकता। यदि उद्देश्य को पूरी तरह भुला दिया जाए तो किसी भी व्यक्ति

के साथ न्याय नहीं हो सकता, क्योंकि उद्देश्य को नजरों में न रखने पर संसार के बड़े-बड़े सेनापति साधारण हत्यारे नज़र आएंगे, सरकारी कर वसूल करने वाले अधिकारी चोर जालसाज दिखाई देंगे और न्यायाधीशों पर भी कत्ल करने का अभियोग लगेगा। इस तरह तो समाज-व्यवस्था और सभ्यता खूनखराबा, चोरी और जालसाजी बनकर रह जाएगी। यदि उद्देश्य की उपेक्षा की जाए तो किसी हुकूमत को क्या अधिकार है कि समाज के व्यक्तियों से न्याय करने को कहे? उद्देश्य की उपेक्षा की जाए तो हर धर्मप्रचारक झूठ का प्रचारक दिखाई देगा और हरेक पैगम्बर पर अभियोग लगेगा कि उसने करोड़ों भोले और अनजान लोगों को गुमराह किया। यदि उद्देश्य को भुला दिया जाए तो हजरत ईसा मसीह गड़बड़ कराने वाले, शान्ति भंग करने वाले और विद्रोह का प्रचार करने वाले दिखाई देंगे और कानून के शब्दों में 4 'खतरनाक व्यक्तित्व' माने जाएंगे, लेकिन हम उनकी पूजा करते हैं। उनका हमारे दिलों में बेहद आदर है, उनकी मूर्ति हमारे दिलों में आध्यात्मिकता का स्पन्दन पैदा करती है। यह क्यों? यह इसलिए कि उनके प्रयत्नों का प्रेरक एक ऊंचे दर्जे का उद्देश्य था। उस युग के शासकों ने उनके उद्देश्य को नहीं पहचाना, उन्होंने उनके बाहरी व्यवहार को ही देखा, लेकिन उस समय से लेकर इस समय तक उन्नीस शताब्दियां बीत चुकी हैं। क्या हमने तब से लेकर अब तक कोई तरक्की नहीं की? क्या हम ऐसी गलतियां दोहरायेंगे अगर ऐसा हो तो मानना पड़ेगा कि इंसानियत की कुर्बानियां, बड़े शहीदों के प्रयत्न बेकार रहे और आज भी हम उसी स्थान पर हैं, जहां आज से बीस शताब्दियों पहले थे?

कानूनी दृष्टि से उद्देश्य का प्रश्न खास महत्व रखता है। जनरल डायर का उदाहरण लीजिए। उसने गोली चलाई और सैकड़ों निरपराध और शस्त्रहीन व्यक्तियों को मार डाला, लेकिन फौजी अदालत ने उसे गोली का निशाना बनाने का हुक्म देने की जगह लाखों रुपये इनाम दिये। एक और उदाहरण पर ध्यान दीजिए–श्री खडगबहादुर सिंह ने, जो एक गोरखा नौजवान है कलकत्ता में एक अमीर मारवाड़ी को छुरे से मार डाला। यदि उद्देश्य को तरफ रख दिया जाए तो खडगसिंह को मौत की सजा मिलनी चाहिए थी, लेकिन उसे कुछ वर्षो की सजा दी गई और उस अवधि से भी बहुत पहले ही मुक्त कर दिया गया। क्या कानून में कोई दरार रखनी थी, जो उसे मौत की सजा न दी गई? या उसके विरुद्ध हत्या का अभियोग सिद्ध न हुआ? उसने हमारी ही तरह अपना अपराध स्वीकार किया था, लेकिन उसका जीवन बच गया और यह स्वतंत्र है। मैं पूछता हूं उसे फांसी की सजा क्यों नहीं दी गई? उसका कार्य जंचा-तुला था। उसने पेचीदा ढंग की तैयारी की थी। उद्देश्य की दृष्टि से उसका कार्य (एक्शन) हमारे कार्य की अपेक्षा ज्यादा घातक और संगीन था। उसे इसलिए बहुत ही नर्म सजा मिली क्योंकि उसका मकसद नेक था। उसने समाज को एक ऐसी जोंक से छुटकारा दिलाया, जिसने कई-एक सुन्दर लड़कियों का खून चूस लिया था। श्री खडगबहादुर सिंह को महज कानून की प्रतिष्ठा बचाये रखने के लिए कुछ वर्षो की सज़ा दी गई।

यह सिद्धांत किस कदर गलत है। यह न्याय के बुनियादी सिद्धांत का विरोध है, जो कि इस प्रकार हैं–'कानून आदमियों के लिए है, आदमी कानून के लिए नहीं है।' इस दशा में क्या कारण है कि हमें भी वे रियायतें न दी जाएं जो श्री खडगबहादुर सिंह को मिली थीं।

स्पष्ट है कि उसे नर्म सज़ा देते समय उसका उद्देश्य दृष्टि में रखा गया था, अन्यथा कोई भी व्यक्ति जो किसी दूसरे को कत्ल करता है, फांसी की सजा से नहीं बच सकता। क्या इसलिए हमें आम कानूनी अधिकार नहीं मिल रहा कि हमारा कार्य हुकूमत के विरुद्ध था या इसलिए कि इस कार्य का राजनैतिक महत्त्व है?

माई लार्ड, इस दशा में मुझे यह कहने की आज्ञा दी जाए कि जो हुकूमत इन कमीनी हरकतों में आश्रय खोजती है, जो हुकूमत व्यक्ति के कुदरती अधिकार छीनती है, उसे जीवित रहने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं। अगर यह कायम है, तो आरजी तौर पर और हजारों बेगुनाहों का खून इसकी गर्दन पर है। यदि कानून उद्देश्य नही देखता, तो न्याय नहीं हो सकता और न ही स्थायी शान्ति स्थापित हो सकती है।

आटे में संखिया (ज़हर) मिलाना जुर्म नहीं, बशर्ते कि इसका उद्देश्य चूहों को मारना हो, लेकिन यदि इससे किसी आदमी को मार दिया जाये तो यह कत्ल का अपराध बन जाता है। लिहाजा ऐसे कानूनों पर जो युक्ति (दलील) पर आधारित नहीं और न्याय के सिद्धांत के विरुद्ध हैं, उन्हें समाप्त कर देना चाहिए। ऐसे ही न्याय-विरोधी कानूनों के कारण बड़े-बड़े श्रेष्ठ बौद्धिक लोगों ने बगावत के कार्य किये हैं।

हमारे मुकदमे के तथ्य बिलकुल सादा हैं। 8 अप्रैल, 1929 को हमने सेंट्रल असेम्बली में दो बम फेंके। उनके धमाके से चन्द लोगों को मामूली खरोंचें आईं। चेम्बर में हंगामा हुआ, सैकड़ों दर्शक और सदस्य बाहर निकल गये। कुछ देर बाद खामोशी छा गई। मैं और साथी बी.के. दत्त खामोशी के साथ दर्शक गैलरी में बैठे रहे और हमने स्वयं अपने को प्रस्तुत किया कि हमें गिरफ्तार कर लिया जाये। हमें गिरफ्तार कर लिया गया। अभियोग लगाये गये और हत्या करने के प्रयत्न के अपराध में हमें सजा दी गई, लेकिन बमों से 4–5 आदमियों को मामूली चोटें आईं और एक बेंच को मामूली-सा नुकसान पहुंचा, और जिन्होंने यह अपराध किया, उन्होंने बिना किसी किस्म के हस्तक्षेप के अपने आपको गिरफ्तारी के लिए पेश कर दिया। सेशन जज ने स्वीकार किया कि यदि हम भागना चाहते तो भागने में सफल हो सकते थे। हमने अपना अपराध स्वीकार किया और अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए बयान दिया। हमें सजा का भय नहीं है। लेकिन हम यह नहीं चाहते कि हमें गलत तौर पर समझा जाए। हमारे बयान से कुछ पैराग्राफ काट दिये गये हैं, यह वास्तविक स्थिति की दृष्टि से हानिकारक है।

समग्र रूप में हमारे वक्तव्य के अध्ययन से साफ प्रकट होता है कि हमारे दृष्टिकोण से हमारा देश एक नाजुक दौर से गुजर रहा है। इस दशा में काफी ऊंची आवाज में चेतावनी देने की जुरूरत थी और हमने अपने विचारानुसार चेतावनी दी है। सम्भव है कि हम गलती पर हों, हमारा सोचने का ढंग जज महोदय के सोचने के ढंग से भिन्न हो, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हमें अपने विचार प्रकट करने की स्वीकृति न दी जाये और गलत बातें हमारे साथ जोड़ी जाएं।

इन्कलाब ज़िन्दाबाद और साम्राज्यवाद मुर्दाबाद के सम्बन्ध में हमने जो व्याख्या अपने बयान में दी, उसे उड़ा दिया गया है; हालांकि यह हमारे उद्देश्य का खास भाग है। इन्कलाब ज़िन्दाबाद से हमारा वह उद्देश्य नहीं था, जो आमतौर पर गलत अर्थ में समझा जाता है। पिस्तौल और बम इन्कलाब नहीं लाते, बल्कि इन्कलाब की तलवार विचारों की

सान पर तेज होती है और यही चीज थी जिसे हम प्रकट करना चाहते थे। हमारे इन्कलाब का अर्थ पूंजीवादी युद्धों की मुसीबतों का अंत करना है। मुख्य उद्देश्य और उसे प्राप्त करने की प्रक्रिया समझे बिना किसी के सम्बन्ध में निर्णय देना उचित नहीं है। गलत बातें हमारे साथ जोड़ना साफ-साफ अन्याय है।

इसकी चेतावनी देना बहुत आवश्यक था। बेचैनी रोज-तेज बढ़ रही है। यदि उचित इलाज न किया गया, तो रोग खतरनाक रूप ले लेगा। कोई भी मानवीय शक्ति इसकी रोकथाम न कर सकेगी। अब हमने इस तूफान का रुख बदलने के लिए यह कार्रवाई की। हम इतिहास के गंभीर अध्येता हैं। हमारा विश्वास है कि यदि सत्ताधारी शक्तियां ठीक समय पर सही कार्रवाइयां करतीं, तो फ्रांस और रूस की खूनी क्रान्तियां न बरस पड़ती। दुनिया की कई बड़ी-बड़ी हुकूमतें विचारों के तूफान को रोकते हुए खून-खराबी के वातावरण में डूब गई। सत्ताधारी लोग परिस्थितियों के प्रवाह को बदल सकते हैं। हम पहली चेतावनी देना चाहते थे और यदि हम कुछ व्यक्तियों की हत्या करने के इच्छुक होते, तो हम अपने मुख्य उद्देश्य में असफल हो जाते। माई लार्ड, इस नीयत (भावना) और उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए हमने कार्रवाई की और इस कार्रवाई के परिणाम हमारे बयान का समर्थन करते हैं। एक और नुक्ता (प्वाइंट) स्पष्ट करना आवश्यक है। यदि हमें बमों की ताकत के संबंध में कतई ज्ञान न होता, तो हम पं. मोतीलाल नेहरू, श्री केलकर श्री जयकर और श्री जिन्ना जैसे सम्माननीय राष्ट्रीय व्यक्तियों की उपस्थिति में क्यों बम फेंकते? हम नेताओं के जीवन किस तरह खतरे में डाल सकते थे? हम पागल तो नहीं हैं? और अगर पागल होते तो जेल में बंद करने के बजाय हमें पागलखाने में बंद किया जाता। बमों के संबंध में हमें निश्चित जानकारी थी। उसी के कारण हमने ऐसा साहस किया। जिन बेंचों पर लोग बैठे थे, उन पर बम फेंकना कहीं आसान काम था, लेकिन खाली जगह पर बमों का फेंकना निहायत मुश्किल काम था। अगर बम फेंकने वाले सही दिमागों के न होते या वे परेशान (असंतुलित) होते तो बम खाली जगह की बजाय बेंचों पर गिरते। तो मैं कहूंगा कि खाली जगह के चुनाव के लिए जो हिम्मत हमने दिखाई, उसके लिए हमें इनाम मिलना चाहिए। इन् हालतों में, माई लार्ड, हम सोचते हैं कि हर्म ठीक तरह समझा नहीं गया। आपकी सेवा में हम राजाओं में कमी कराने नहीं आये, बल्कि अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए आये हैं। हम चाहते हैं कि न तो हम से अनुचित व्यवहार किया जाये न ही हमारे संबंध में अनुचित राय दी जाये। सज़ा का सवाल हमारे लिए गौण है।

✿✿

23 दिसम्बर. 1929 को श्री यशपाल ने वायसराय लार्ड इरविन की ट्रेन के नीचे बम का विस्फोट किया। इसके लिए अहिंसावादी नेतृत्व ने क्रान्तिकारियों की निन्दा का तूफान उठा दिया। इसका जवाब देने के लिए 28 जनवरी, 1930 को 'बम का दर्शन ' नामक परिपत्र सारे देश में एक साथ बांटा गया। भगतसिंह के उस समय के जेल के साथी और बाद में उनके जीवन चरित्र-लेखक श्री जतीन्द्रनाथ सान्याल के कथनानुसार इस परिपत्र को भगतसिंह ने अपनी कालकोठरी से भेजा था।

# बम का दर्शन

(20 जनवरी, 1930)

हाल ही की घटनाएं! विशेष रूप से 23 दिसम्बर, 1929 को वायसराय की स्पेशल उड़ाने का जो प्रयत्न किया गया था, उसकी निन्दा करते हुए कांग्रेस द्वारा पारित किया गया प्रस्ताव तथा 'यंग इंडिया' में गांधी जी द्वारा लिखे गये लेखों से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने गांधी जी से साठ-गांठ कर भारतीय क्रान्तिकारियों के विरुद्ध घोर आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया है। जनता के बीच भाषणों तथा पत्रों के माध्यम से क्रान्तिकारियों के विरुद्ध बराबर प्रचार किया जाता रहा है। या तो यह जानबूझकर किया गया या फिर केवल अज्ञान के कारण उनके विषय में गलत प्रचार होता रहा और उन्हें गलत समझा जाता रहा; परन्तु क्रान्तिकारी अपने सिद्धांतों तथा कार्यो की ऐसी आलोचना से नहीं घबराते हैं। बल्कि वे ऐसी आलोचना का स्वागत करते हैं, क्योंकि वे इस बात को स्वर्णावसर मानते हैं कि ऐसा करने से उन्हें उन लोगों को क्रान्तिकारियों के मूलभूत सिद्धांतों तथा उच्चादर्शों को, जो उनकी प्रेरणा तथा शक्ति के अनवरत स्रोत हैं, समझाने का अवसर मिलता है। आशा की जाती है कि इस लेख द्वारा आम जनता को यह जानने का अवसर मिलेगा कि क्रान्तिकारी क्या हैं और उनके विरुद्ध किए गए भ्रमात्मक प्रचार से उत्पन्न होने वाली गलतफहमियों से उन्हें बचाया जा सके।

पहले हम हिंसा और अहिंसा के प्रश्न पर ही विचार करें। हमारे विचार से इन शब्दों का प्रयोग ही गलत किया गया है, और ऐसा करना ही दोनों दलों के साथ अन्याय करना है, क्योंकि इन शब्दों से दोनों ही दलों के सिद्धांतों का स्पष्ट बोध नहीं हो पाता। हिंसा का अर्थ है अन्याय के लिए किया गया बल प्रयोग, परन्तु क्रान्तिकारियों का तो यह उद्देश्य नहीं है, दूसरी ओर अहिंसा का जो आम अर्थ समझा जाता है, वह है आत्मिक शक्ति का सिद्धांत। उसका उपयोग व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय अधिकारों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। अपने-आपको कष्ट देकर आशा की जाती है कि इस प्रकार अन्त में अपने विरोधी का ह्लदय-परिवर्तन संभव हो सकेगा।

एक क्रान्तिकारी जब कुछ बातों को अपना अधिकार मान लेता है तो वह उनकी मांग

करता है, अपनी उस मांग के पक्ष में दलीलें देता है, समस्त आत्मिक शक्ति के द्वारा उन्हें प्राप्त करने की इच्छा करता है। उसकी प्राप्ति के लिए अत्यधिक कष्ट सहन करता है, इसके लिए वह बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए प्रस्तुत रहता है और उसके समर्थन में वह अपना समस्त शारीरिक बल प्रयोग भी करता है। इसके इन प्रयत्नों को आप चाहे जिस नाम से पुकारें, परन्तु आप इन्हें हिंसा के नाम से सम्बोधित नहीं कर सकते, क्योंकि ऐसा करना कोष में दिए इस शब्द के अर्थ के साथ अन्याय होगा। सत्याग्रह का अर्थ है सत्य के लिए आग्रह। उसकी स्वीकृति के लिए केवल आत्मिक शक्ति के प्रयोग का ही आग्रह क्यों? इसके साथ-साथ शारीरिक बल-प्रयोग भी न किया जाए? क्रान्तिकारी स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए अपनी शारीरिक एवं नैतिक शक्ति दोनों के प्रयोग में विश्वास करता है, परन्तु नैतिक शक्ति का प्रयोग करने वाले शारीरिक बल-प्रयोग को निषिद्ध मानते हैं। इसलिए अब सवाल यह नहीं है कि आप हिंसा चाहते हैं या अहिंसा, बल्कि प्रश्न तो यह है कि आप अपने उद्देश्य-प्राप्ति के लिए शारीरिक बल सहित नैतिक बल का प्रयोग करना चाहते हैं, या केबल आत्मिक शक्ति का।

क्रान्तिकारियों का विश्वास है कि देश को क्रान्ति से ही स्वतंत्रता मिलेगी। वे जिस क्रान्ति के लिए प्रयत्नशील हैं और जिस क्रान्ति का रूप उनके सामने स्पष्ट है, उसका अर्थ केवल यह नहीं है कि विदेशी शासकों तथा उनके पिट्ठुओं से क्रान्तिकारियों का केवल सशस्त्र संघर्ष हो, बल्कि इस सशस्त्र संघर्ष के साथ-साथ नवीन सामाजिक व्यवस्था के द्वार देश के लिए मुक्त हो जाएं। क्रान्ति पूंजीवाद, वर्गबाद तथा कुछ लोगों को ही विशेषाधिकार दिलाने वाली प्रणाली का अन्त कर देगी। यह राष्ट्र को अपने पैरों पर खड़ा करेगी, उससे नवीन राष्ट्र और नये समाज का जन्म होगा। क्रान्ति से सबसे बड़ी बात तो यह होगी कि वह मजूदूर तथा किसानों का राज्य कायम कर उन सब सामाजिक अवांछित तत्त्वों को समाप्त कर देगी जो देश की राजनैतिक शक्ति को हथियाये बैठे हैं।

आज की तरुण पीढ़ी को जो मानसिक गुलामी तथा धार्मिक रूढ़िवादी बन्धन जकड़े हैं और उससे छुटकारा पाने के लिए तरुण समाज की जो बेचैनी है, उसी में क्रान्तिकारी प्रगतिशीलता के अंकुर देख रहा है। नवयुवक जैसे-जैसे मनोविज्ञान आत्मसात् करता जायेगा वैसे-वैसे राष्ट्र की गुलामी का चित्र उसके सामने स्पष्ट होता जायेगा तथा उसकी देश को स्वतंत्र करने की इच्छा प्रबल होती जायेगी। और उसका यह कम तब तक चलता रहेगा जब तक कि युवक न्याय, क्रोध और क्षोभ से ओतप्रोत हो अन्याय करने वालों की हत्या न प्रारम्भ कर देगा। इस प्रकार देश में आतंकवाद का जन्म होता है। आतंकवाद सम्पूर्ण क्रान्ति नहीं और क्रान्ति भी आतंकवाद के बिना पूर्ण नहीं। यह तो क्रान्ति का एक आवश्यक और अवश्यम्भावी अंग है। इस सिद्धांत का समर्थन इतिहास की किसी भी क्रान्ति का विश्लेषण कर जाना जा सकता है। आतंकवाद आततायी के मन में भय पैदा कर पीड़ित जनता में प्रतिशोध की भावना जागत कर उसे शक्ति प्रदान करता है। अस्थिर भावना वाले लोगों को इससे हिम्मत बंधती है तथा उनमें आत्मविश्वास पैदा होता है। इससे दुनिया के सामने क्रान्ति के उद्देश्य का वास्तविक रूप प्रकट हो जाता है। क्योंकि ये किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता की उत्कट महत्त्वाकांक्षा का विश्वास दिलाने वाले प्रमाण हैं। जैसे दूसरे देशों में होता आया है, वैसे ही भारत में भी आतंकवाद क्रान्ति का रूप धारण कर लेगा और अन्त में

क्रान्ति से ही देश को सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता मिलेगी।

तो यह हैं क्रान्तिकारी के सिद्धांत, जिनमें वह विश्वास करता है और जिन्हें देश के लिए प्राप्त करना चाहता है। इस तथ्य की प्राप्ति के लिए वह गुप्त तथा खुले-आम दोनों ही तरीकों से प्रयत्न कर रहा है। इस प्रकार एक शताब्दी से संसार में जनता तथा शासक वर्ग में जो संघर्ष चला आ रहा है, वही अनुभव उसके लक्ष्य पर पहुंचने का मार्गदर्शक है। क्रान्तिकारी जिन तरीकों में विश्वास करता है वे कभी असफल नहीं हुए।

इस बीच कांग्रेस क्या कर रही थी? उसने अपना ध्येय स्वराज्य से बदलकर पूर्ग स्वतंत्रता घोषित किया। इस घोषणा से कोई भी व्यक्ति यही निष्कर्ष निकालेगा कि कांग्रेस ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा न कर क्रान्तिकारियों के विरुद्ध ही युद्ध की घोषणा कर दी है। इस सम्बन्ध में कांग्रेस का पहला वार था उसका वह प्रस्ताव जिसमें 23 दिसम्बर 1929 को वायसराय की स्पेशल उड़ाने के प्रयत्न की निन्दा की गई। इस प्रस्ताव का मसविदा गांधी जी ने तैयार किया था और उसके पारित कराने के लिए गांधी जी ने अपनी सारी शक्ति लगा दी। परिणाम यह हुआ कि 1913 की सदस्य संख्या में वह केवल 31 अधिक मतों से पारित हो सका। क्या इस अत्यल्प बहुमत में भी राजनैतिक ईमानदारी थी? इस सम्बन्ध में हम सरलादेवी चौधरानी का मत ही यहां उद्धृत करें। वे तो जीवन भर कांग्रेस की भक्त रही हैं। इस सम्बन्ध में प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा है-मैंने महात्मा गांधी के अनुयायियों के साथ इस विषय में जो बातचीत की उसमें मुझे मालूम हुआ कि वे इस सम्बन्ध में अपने स्वतंत्र विचार महात्मा जी के प्रति व्यक्तिगत निष्ठा के कारण प्रकट न कर सके, तथा इस प्रस्ताव के विरुद्ध मत देने में असमर्थ रहे, जिसके प्रणेता महात्मा जी थे। जहां तक गांधी जी की दलील का प्रश्न है, उस पर हम बाद में विचार करेंगे। उन्होंने जो दलीलें दी हैं वे कुछ कम या अधिक इस सम्बन्ध में कांग्रेस में दिए गए भाषण का ही विस्तृत रूप हैं।

इस दुःखद प्रस्ताव के विषय में एक बात मार्क की है जिसे हम अनदेखा नहीं कर सकते। वह यह कि यह सर्वविदित है कि कांग्रेस अहिंसा का सिद्धांत मानती है और पिछले दस वर्षो से वह इसके समर्थन में प्रचार करती रही है। यह सब होने पर भी प्रस्ताव के समर्थन में भाषणों में गाली-गलौच की गई। उन्होंने क्रान्तिकारियों को बुजदिल कहा और उनके कार्यो को घृणित। उनमें से एक वक्ता ने धमकी देते हुए यहां तक कह डाला कि यदि वे (सदस्य) गांधी जी का नेतृत्व चाहते हैं तो उन्हें इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से पारित करना चाहिए। इतना सब कुछ किए जाने पर भी यह प्रस्ताव बहुत थोड़े मतों से ही पारित हो सका। इससे यह बात निशंक प्रमाणित हो जाती है कि देश की जनता पर्याप्त संख्या में क्रान्तिकारियों का समर्थन कर रही है इस तरह से इसके लिए गांधी जी हमारे बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने इस प्रश्न पर विवाद. खड़ा किया और इस प्रकार संसार को दिखा दिया कि कांग्रेस, जो अहिंसा का गढ़ माना जाता है, वह सम्पूर्ण नहीं तो एक हद तक तो कांग्रेस से अधिक क्रान्तिकारियों के साथ है।

इस विषय में गांधी जी ने जो विजय प्राप्त की वह एक प्रकार की हार ही के बराबर थी। और अब वे 'दि कल्ट आफ दि बाम' लेख द्वारा क्रान्तिकारियों पर दूसरा हमला कर बैठे हैं। इस संबंध में आगे कुछ कहने से पूर्व इस लेख पर हम अच्छी तरह विचार करेंगे। इस

लेख में उन्होंने तीन बातों का उल्लेख किया है। उनका विश्वास, उनके विचार और उनका मत। हम उनके विश्वास के संबंध में विश्लेषण नहीं करेंगे, क्योंकि विश्वास में तर्क के लिए स्थान नही है। गांधी जी जिसे हिंसा कहते हैं और जिसके विरुद्ध उन्होंने जो तर्कसंगत विचार प्रकट किए हैं, हम उनका सिलसिलेवार विश्लेषण करें।

गांधी जी सोचते हैं कि उनकी यह धारणा सही है कि अधिकतर भारतीय जनता को हिंसा की भावना छू तक नहीं गई है, और अहिंसा उनका राजनैतिक शस्त्र बन गया है। हाल ही में उन्होंने देश का जो भ्रमण किया है उस अनुभव के आधार पर उनकी यह धारणा बनी है, परन्तु उन्हें अपनी इस यात्रा के इस अनुभव से इस भ्रम में न पड़ना चाहिए। यह बात सही है कि (कांग्रेस) नेता अपने दौरे वहीं तक सीमित रखता है जहां तक डाक गाड़ी उसे आराम से पहुंचा सकती है, जबकि गांधी जी ने अपनी यात्रा का दायरा वहां तक बढ़ा दिया है जहां तक कि मोटरकार द्वारा वे जा सकें। इस यात्रा में वे धनी व्यक्तियों के ही निवासस्थानों पर रुके। इस यात्रा का अधिकतर समय उनके भक्तों द्वारा आयोजित गोष्ठियों में की गई उनकी प्रशंसा सभाओं में, यदा-कदा अशिक्षित जनता को दिए जाने वाले दर्शनों में बीता, जिसके विषय में उनका दावा है कि वे उन्हें अच्छी तरह समझते हैं, परन्तु यही बात इस दलील के विरुद्ध है कि वे आम जनता की विचारधारा को जानते हैं।

कोई व्यक्ति जन-साधारण की विचारधारा को केवल मंचों से दर्शन और उपदेश देकर नहीं समझ सकता। वह तो केवल इतना ही दावा कर सकता है कि उसने विभिन्न विषयों पर अपने विचार जनता के सामने रखे। क्या गांधी जी ने इन वर्षो में आम जनता के सामाजिक जीवन में भी कभी प्रवेश करने का प्रयत्न किया? क्या कभी उन्होंने किसी सञ्चा को गांव के किसी चौपाल के अलाव के पास बैठकर किसी किसान के विचार जानने का प्रयत्न किया? क्या किसी कारखाने के मजदूर के साथ एक भी शाम गुजार कर उसके विचार समझने की कोशिश की है? पर हमने यह किया है और इसीलिए हम दावा करते हैं कि हम आम जनता को जानते हैं। हम गांधी जो को विश्वास दिलाते हैं कि साधारण भारतीय साधारण मानव के समान ही अहिंसा तथा अपने शत्रु से प्रेम करने की आध्यात्मिक भावना को बहुत कम समझता है। संसार का तो यही नियम हैं—तुम्हारा एक मित्र है, तुम उससे स्नेह करते हो, कभी-कभी तो इतना अधिक कि तुम उसके लिए अपने प्राण भी दे देते हो। तुम्हारा शत्रु है, तुम उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध नही रखते हो। क्रान्तिकारियों का यह सिद्धांत नितान्त सत्य, सरल और सीधा है और यह ध्रुव सत्य आदम और हौवा के समय से चला आ रहा है तथा इसे समझने में कभी किसी को कठिनाई नही हुई। हम यह बात स्वयं के अनुभव के आधार पर कह रहे हैं। वह दिन दूर नहीं जब लोग क्रान्तिकारी विचारधारा को सक्रिय रूप देने के लिए हज़ारो की संख्या में जमा होंगे।

गांधी जी घोषणा करते हैं कि अहिंसा के सामर्थ्य तथा अपने आपको पीड़ा देने की प्रणाली से उन्हें यह आशा है कि वे एक दिन विदेशी शासकों का हृदय परिवर्तन कर अपनी विचारधारा का उन्हें अनुयायी बना लेंगे। अब उन्होंने अपने सामाजिक जीवन के इस चमत्कार की ‘प्रेम संहिता’ के प्रचार के लिए अपने आपको समर्पित कर दिया है। ये अडिग विश्वास के साथ उसका प्रचार कर रहे हैं, जैसा कि उनके कुछ अनुयायियों ने भी किया है। परन्तु क्या वे बता सकते हैं कि भारत में कितने शत्रुओं का हृदय परिवर्तन कर उन्हें भारत

का मित्र बनाने में समर्थ हुए हैं? वे कितने ओडायरों, डायरों तथा रीडिंग और इरविन को भारत का मित्र बना सके हैं? यदि किसी को भी नहीं तो भारत उनकी इस विचारधारा से कैसे सहमत हो सकता है कि वे इंगलैंड को अहिंसा द्वारा समझा-बुझा कर इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार कर लेंगे कि वह भारत को स्वतंत्रता दे दे।

यदि वाइसराय की गाड़ी के नीचे बमों का ठीक से विस्फोट हुआ होता तो दो में से एक बात अवश्य हुई होती, या तो वाइसराय अत्यधिक घायल हो जाते या उनकी मृत्यु हो गई होती। ऐसी स्थिति में वाइसराय तथा राजनैतिक दलों के नेताओं के बीच मन्त्रणा न हो पाती, यह प्रयत्न रुक जाता और उससे राष्ट्र का भला ही होता। कलकत्ता कांग्रेस की चुनौती के बाद भी स्वशासन की भीख मांगने के लिए वाइसराय भवन के आस-पास मंडराने वालों के ये घृणास्पद प्रयत्न विफल हो जाते। यदि बमों का ठीक से विस्फोट हुआ होता तो भारत का एक शत्रु उचित सजा पा जाता। 'मेरठ' तथा लाहौर-षड्यंत्र' और 'भुसावल काण्ड' का मुकदमा चलाने वाले केवल भारत के शत्रुओं को ही मित्र प्रतीत हो सकते हैं। साइमन कमीशन के सामूहिक विरोध से देश में जो इकाई स्थापित हो गई थी, गांधी तथा नेहरू की राजनैतिक बुद्धिमत्ता के बाद ही इरविन उसे छिन्न-भिन्न करने में समर्थ हो सका। आज कांग्रेस में भी आपस में फूट पड़ गई है। हमारे इस दुर्भाग्य के लिए वाइसराय या उसके चाटुकारों के सिवा कौन जिम्मेदार हो सकता है! इस पर भी हमारे देश में ऐसे लोग हैं जो उसे भारत का मित्र कहते हैं।

देश के ऐसे भी लोग होंगे जिन्हें कांग्रेस के प्रति श्रद्धा नहीं, इसमे वे कुछ आशा भी नहीं करते। यदि गांधी जी कान्तिकारियों को इस श्रेणी में गिनते हैं तो वे उनके साथ अन्याय करते हैं। वे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि कांग्रेस ने जन-जागृति का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उसने आम जनता में स्वतन्त्रता की भावना जागृत की है, जो कि उनका यह दृढ़ विश्वास है कि जब तक कांग्रेस में सेन गुप्ता जैसे अद्भुत प्रतिभाशाली व्यक्तियों का, जो वाइसराय की ट्रेन उड़ाने में गुप्तचर विभाग का हाथ होने की बात करते हैं, तथा अन्सारी जैसे लोग, जो राजनीति कम जानते हैं और उचित तर्क की उपेक्षा कर बेतुकी और तर्कहीन दलीलें देकर यह कहते हैं कि किसी राष्ट्र ने बम से स्वतंत्रता नहीं प्राप्त की आदि : जब तक कांग्रेस के निर्णयों में इनके विचारों का प्राधान्य रहेगा, देश उससे बहुत कम आशा कर सकता है। क्रान्तिकारी तो उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब कांग्रेस आन्दोलन से अहिंसा की यह सनक समाप्त हो जायेगी और वह क्रान्तिकारियों के कंधे से कंधा मिला कर पूर्ण स्वतंत्रता के सामूहिक लक्ष्य की ओर बढ़ेंगे। इस वर्ष उन्होंने इस सिद्धांत को स्वीकार कर लिया है, जिसका प्रतिपादन क्रान्तिकारी पिछले 25 वर्षो से करते चले आ रहे हैं। हम आशा करें कि अगले वर्ष वे उनके स्वतंत्रता प्राप्ति के तरीकों का भी समर्थन करेंगे।

गांधी जी यह प्रतिपादन करते हैं कि जब-जब हिंसा का प्रयोग हुआ है तब-तब सैनिक खर्च बढ़ा है। यदि उनका मन्तव्य क्रान्तिकारियों की पिछली 25 वर्षो की गतिविधियों से है तो हम उनके वक्तव्य को चुनौती देते हैं कि वे अपने इस कथन को तथ्य और आकड़ों से सिद्ध करें। बल्कि हम तो यह कहेंगे कि उनके अहिंसा और सत्याग्रह के प्रयोगों का परिणाम, जिनकी तुलना स्वतंत्रता संग्राम से नहीं की जा सकती, नौकरशाही अर्थ-व्यवस्था पर हुआ है। आन्दोलनों का, फिर वे हिंसात्मक हों या अहिंसात्मक, सफल हों या असफल, परिणाम

तो भारत की अर्थ-व्यवस्था पर होगा ही।

देश में सरकार ने जो विभिन्न सुधार किये गांधी जी उसका सम्बन्ध क्रान्तिकारियों से क्यों जोड़ते हैं? उन्होंने मार्लेमिण्टा रिफार्म, माण्टेग्यू रिफार्म या ऐसे ही अन्य सुधारों की न तो कभी परवाह की और न ही उनके लिए आदोलन किया। ब्रिटिश सरकार ने तो यह टुकड़े वैधानिक आन्दोलनकारियों के सामने फेंके थे, जिससे उन्हें उचित मार्ग पर चलने से पथभ्रष्ट किया जा सके। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें तो यह घूस दी थी, जिससे वे क्रान्तिकारियों को समूल नष्ट करने की उनकी नीति के साथ सहयोग करें। गांधी जी जैसाकि इन्हें सम्बोधित करते हैं, कि भारत के लिए ये खिलौने जैसे हैं, उन लोगों को बहलाने-फुसलाने के लिए जो समय-समय पर होम रूल, स्वशासन, जिम्मेदार सरकार पूर्ग जिम्मेदार सरकार, औपनिवेशक स्वराज्य जैसे अनेक वैधानिक नाम जो गुलामी के हैं, मांग करते हैं। क्रान्तिकारियों का लक्ष्य तो शासन सुधार का नहीं है, वे तो स्वतंत्रता का स्तर कभी का ऊंचा कर चुके हैं और वे उसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बिना किसी हिचकिचाहट के बलिदान कर रहे हैं। उनका दावा है कि उनके बलिदानों ने जनता की विचारधारा में प्रचंड परिवर्तन किया है। उसके प्रयत्नों से वे देश को स्वतंत्रता के मार्ग पर बहुत आगे बढ़ा ले गए हैं और यह बात उनसे राजनैतिक क्षेत्र में मतभेद रखने वाले लोग भी स्वीकार करते हैं।

गांधी जी का कथन है कि हिंसा से प्रगति का मार्ग अवरुद्ध होकर स्वतंत्रता का दिवस स्थगित होता जाता है, तो हम इस विषय में अनेक ऐसे उदाहरण दे सकते हैं, जिनमें जिन देशों ने हिंसा से काम लिया उनकी सामाजिक प्रगति होकर उन्हें राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई। हम रूस तथा तुर्की का ही उदाहरण लें। दोनों ने हिंसा के उपायों से ही सशस्त्र क्रान्ति द्वारा सत्ता प्राप्त की। उसके बाद भी सामाजिक सुधारों के कारण वहां कि जनता ने बड़ी तीव गीत से प्रगति की। एकमात्र अफगनिस्तान के उदाहरण से राजनैतिक सूत्र सिद्ध नहीं किया जा सकता। यह तो अपवादमात्र है।

गांधी जी के विचार में 'असहयोग आन्दोलन के समय जो जन-जागृति हुई है वह अहिंसा के उपदेश का ही परिणाम था', परन्तु यह धारणा गलत है और यह श्रेय अहिंसा को देना भी भूल है, क्योंकि जहां भी अत्यधिक जन जागृति हुई वह सीधे मोर्चे की कार्रवाई से हुई। उदाहरणार्थ, रूस में शक्तिशाली जन आन्दोलन से ही वहां किसान और मज़दूरों में जागृति उत्पन्न हुई। उन्हें तो किसी ने अहिंसा का उपदेश नहीं दिया था, बल्कि हम तो यहां तक कहेंगे कि अहिंसा तथा गांधी जी की समझौता नीति से ही उन शक्तियों में फूट पड़ गई जो सामूहिक मोर्चे के नारे से एक हो गई थी। यह प्रतिपादित किया जाता है कि राजनैतिक अन्यायों का मुकाबला अहिंसा के शस्त्र से किया जा सकता है, पर इस विषय में संक्षेप में तो यही कहा जा सकता है कि यह अनोखा विचार है जिसका अभी प्रयोग नहीं हुआ है।

दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के जो न्यायोचित अधिकार माने जाते थे, उन्हें प्राप्त करने में अहिंसा का शस्त्र असफल रहा। वह भारत को स्वराज्य दिलाने में भी असफल रहा, जबकि राष्ट्रीय कांग्रेस स्वयंसेवकों की एक बड़ी सेना उसके लिए प्रयत्न करती रही तथा उस पर लगभग सवा करोड़ रुपया भी खर्च किया गया। हाल ही में बारदोली सत्याग्रह में इसकी असफलता सिद्ध हो चुकी है। इस अवसर पर सत्याग्रह के नेता गांधी और पटेल ने बारदोली के किसानों को जो कम से कम अधिकार दिलाने का आश्वासन दिया था, उसे भी

वे न दिला सके। इसके अतिरिक्त अन्य किसी देशव्यापी आन्दोलन की बात हमें मालूम नहीं। अब तक इस अहिंसा को एक ही आशीर्वाद मिला और वह था असफलता का। ऐसी स्थिति में यह आश्चर्य नहीं कि देश ने फिर उसके प्रयोग से इनकार कर दिया। वास्तव में गांधी जी जिस रूप में सत्याग्रह का प्रचार करते हैं, वह एक प्रकार का आन्दोलन है, एक विरोध है जिसका स्वाभाविक परिणाम समझौते में होता है, जैसाकि प्रत्यक्ष देखा गया है। इसलिए जितनी जल्दी हम समझ लें कि स्वतंत्रता और गुलामी में कोई समझौता नहीं हो सकता उतना ही अच्छा है।

गांधी जी सोचते हैं 'हम नये युग में प्रवेश कर रहे हैं।' परन्तु कांग्रेस विधान में शब्दों का हेर-फेर मात्र कर, अर्थात् स्वराज्य को पूर्ण स्वतंत्रता कह देने से नया युग प्रारंभ नहीं हो जाता। वह दिन वास्तव में एक महान दिवस होगा जब कांग्रेस देशव्यापी आन्दोलन प्रारंभ करने का निर्णय करेगी। जिसका आधार सर्वमान्य क्रान्तिकारी सिद्धांत होंगे। ऐसे समय तक स्वतंत्रता का झंडा फहराना हास्यास्पद होगा। इस विषय में हम सरलादेवी चौधरानी के इन विचारों से सहमत हैं जो उन्होंने एक पत्र संवाददाता को भेंट में व्यक्त किए। उन्होंने कहा : 31 दिसम्बर, 1929 की अर्ध रात्रि के ठीक एक मिनट बाद स्वतंत्रता का झंडा फहराना, यह एक विचित्र घटना है। उस समय जी. ओ. सी, असिस्टेन्ट जो.ओ.सी. तथा अन्य लोग इम बात को अच्छी तरह जानते थे कि स्वतंत्रता का झंडा फहराने का निर्णय आधी रात तक अधर में लटका है, क्योंकि यदि वाइसराय या सेक्रेटरी आफ स्टेट का कांग्रेस को यह सन्देश आ जाता है कि भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया गया है तो रात्रि को 11 बजकर 59 मिनट पर भी स्थिति में परिवर्तन हो सकता था। इससे स्पष्ट है कि पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्ति का ध्येय नेताओं की हार्दिक इच्छा नहीं थी, बल्कि एक बाल हठ के समान था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए उचित तो यही होता कि वह पहले स्वतंत्रता प्राप्त कर फिर उसकी घोषणा करती। यह सच है कि अब औपनिवेशिक स्वराज्य के बजाय कांग्रेस के वक्ता जनता के सामने पूर्ण स्वतंत्रता का ढोल पीटेंगे। वे अब जनता से कहेंगे कि जनता को उस संघर्ष के लिए तैयार हो जाना चाहिए जिसमें एक पक्ष तो मुझे बाजी करेगा और दूसरा उन्हें केवल सहता रहेगा, जब तक कि वह खूब पिटकर इतना हताश हो जाये कि फिर न उठ सके। क्या उसे संघर्ष कहा जा सकता है और क्या इससे देश को पूर्ण स्वतंत्रता मित्र सकती है? किसी भी राष्ट्र के लिए सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्ति का ध्येय सामने रखना अच्छा है, परन्तु साथ में यह भी आवश्यक है कि लक्ष्य तक पहुंचने के लिए उन साधनों का उपयोग किया जाये जो योग्य ही और जो पहले उपयोग में भा चुके हों. अन्यथा संसार के सम्मुख हमारे हास्यास्पद बनने का भय बना रहेगा।

गांधी जी ने सभी विचारशील लोगों से कहा कि वे लोग क्रान्तिकारियों से सहयोग करना बन्द कर दें तथा उनके कार्यो की निन्दा करें जिससे हमारे इस प्रकार उपेक्षित देशभक्तों की हिंसात्मक विचारधारा को बल न मिल सके और वे हिंसा की निरर्थकता और हिंसात्मक कार्यो से जो हानि हुई है, उसे समझ सकें। लोगों को उपेक्षित तथा पुरानी दलीलों के समर्थक कह देना जितना आसान है, उसी प्रकार उनकी निन्दा कर जनता से उनसे सहयोग न करने को कहना. जिससे वे अलग-अलग हो अपना कार्यक्रम स्थगित करने के लिए बाध्य हो जाएं। यह सब करना विशेष रूप से उस व्यक्ति के लिए आसान होगा जो

जनता के कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों का विश्वासपात्र हो। गांधी जी ने जीवन भर जन-जीवन का अनुभव किया है, पर यह बड़े दुःख की बात है कि वे फिर भी क्रान्तिकारियों का मनोविज्ञान न तो समझते हैं और न समझना ही चाहते हैं। वह सिद्धांत अमूल्य है, जो प्रत्येक क्रान्तिकारी को प्रिय है। जो व्यक्ति क्रान्तिकारी बनता है, जब वह अपना सिर हथेली पर रखकर किसी क्षण भी आत्मबलिदान के लिए तैयार रहता है तो वह केवल खेल के लिए नहीं। वह यह त्याग और बलिदान इसलिए भी नहीं करता कि जब जनता उसके साथ सहानुभूति दिखाने की स्थिति में हो तो उसकी जै-जैकार करे। वह इस मार्ग का इसलिए अवलम्बन करता है कि उसका सद्विवेक उसे इसकी प्रेरणा देता है? उसकी आत्मा उसे उसके लिए प्रेरित करती है।

एक क्रान्तिकारी सबसे अधिक तर्क में विश्वास करता है। वह केवल तर्क और तर्क में ही विश्वास करता है। किसी प्रकार का गाली-गलौच या निंदा, चाहे फिर वह ऊंचे-से-ऊचे स्तर से की गई हो, उसे अपने निश्चित उद्देश्य प्राप्ति से वंचित नहीं कर सकती। यह सोचना कि यदि जनता का सहयोग न मिला या उसके कार्य की प्रशंसा न की गई तो यह अपने उद्देश्य कों छोड़ देगा, निरी मूर्खता है। अनेक क्रान्तिकारी, जिनके कार्यो की वैधानिक आन्दोलनकारियों ने घोर निंदा की, फिर भी वे उसकी परवाह न कर फांसी के तख्ते पर झूल गये। यदि तुम चाहते हो कि क्रान्तिकारी अपनी गतिविधियों को स्थगित कर दें तो उसके लिए होना तो यह चाहिए कि उनके साथ तर्क द्वारा अपना मत प्रमाणित किया जाये। यह एक और केवल यही एक रास्ता है, और बाकी बातों के विषय में किसी को सन्देह नहीं होना चाहिए। क्रान्तिकारी इस प्रकार के डराने-धमकाने से कदापि हार मानने वाला नहीं।

हम प्रत्येक देशभक्त से निवेदन करते हैं कि वे हमारे साथ गम्भीरतापूर्वक इस युद्ध में शामिल ही। कोई भी व्यक्ति अहिंसा और ऐसे ही अजीबो-गरीब तरीकों से मनोवैज्ञानिक प्रयोग कर राष्ट्र की स्वतंत्रता के साथ खिलवाड़ न करे। स्वतंत्रता राष्ट्र का प्राण है। हमारी गुलामी हमारे लिए लज्जास्पद है, न जाने कब हममें यह बुद्धि और साहस होगा कि हम उससे मुक्ति प्राप्त कर स्वतंत्र हो सकें? हमारी प्राचीन सभ्यता और गौरव की विरासत का क्या लाभ, यदि हम में यह स्वाभिमान न रहे कि हम विदेशी गुलामी, विदेशी झंडे और बादशाह के सामने सिर झुकाने से अपने आपको न रोक सकें!

क्या यह अपराध नहीं है कि बिटेन ने भारत में अनैतिक शासन किया? हमें भिखारी बनाया; तथा हमारा समस्त खून चूस लिया? एक जाति और मानवता के नाते हमारा घोर अपमान तथा शोषण किया गया है। क्या जनता अब भी चाहती है कि इस अपमान को भुलाकर हम ब्रिटिश शासकों को क्षमा कर दें! हम बदला लेंगे। जो जनता द्वारा शासकों से लिया गया न्यायोचित बदला होगा। कायरों को पीठ दिखाकर समझौता और शांति की आशा से चिपके रहने दीजिए। हम किसी से भी दया की भिक्षा नहीं मांगते हैं और हम भी किसी को क्षमा नहीं करेंगे। हमारा युद्ध विजय या मृत्यु के निर्णय तक चलता ही रहेगा। क्रान्ति चिरंजीवी हो।

करतार सिंह<br>
प्रेजीडेंट

✡✡

जेल सुधार कमेटी की सिफारिशों को लागू करने में सरकार टाल-मटोल कर रही थी। इस पर भगतसिंह ने फिर भूख हड़ताल कर दी। सरकार ने घबराकर नया आश्वासन दिया। उन्होंने भूख हड़ताल तोड़ दी, पर और भी कई शिकायतें थीं। भगतसिंह ने अदालत जाना बंद कर दिया। स्पेशल मैजिस्ट्रेट की अदालत में उन दिनों केस चल रहा था। इस पर 'सिविल एंड मिलिटरी गजट' के अर्ध सरकारी पत्र में एक वक्तव्य छपा कि अभियुक्तों ने अंग्रेजी सरकार की अदालतों का बहिष्कार कर दिया है। यह बात झूठ थी। भगतसिंह ने 11 फरवरी, 1930 को अपनी और बी.के.दत्त की तरफ से मैजिस्ट्रेट को यह पत्र लिखा :

मिस्टर मैजिस्ट्रेट,

आपके 4 फरवरी, 1930 के इस आदेश के बारे में, जो सिविल एंड मिलिट्री गजट में प्रकाशित हुआ है, यह जुरूरी मालूम होता है कि हम लोग अदालत में न आने के कारणों को आप पर प्रकट कर दें।

यह गलत है कि हमने अंग्रेजी सरकार की अदालतों का बहिष्कार कर रखा है। आज हम मिस्टर लुइस की अदालत में जा रहे हैं जो हमारे विरुद्ध जेल एक्ट की दफा 22 के अधीन मुकदमे की सुनवाई कर रहे हैं। आपके सामने हम अपनी दिक्कतों को अपनी ज़मानत की दरखास्त में पेश कर चुके हैं, पर उनके बारे में कभी कोई सुनवाई नहीं हुई।

हमारे साथी अभियुक्त हिन्दुस्तान के विभिन्न और दूर-दूर के प्रान्तों के रहने वाले हैं। इसलिए उनको अपने हमदर्दों से मुलाकात की सुविधाएं मिलनी चाहिए। श्री बी. के. दत्त ने कुमारी लज्जावती से और श्री कमलनाथ तिवारी ने किसी और सज्जन से मुलाकात करने की दरखास्त दी थी, लेकिन इनको इस आधार पर मुलाकात की इजाजत नहीं दी गई कि वे न तो इन दोनों के रिश्तेदार हैं और न वे वकील हैं। बाद में उनको इनका अधिकारपत्र प्राप्त कर लेने पर भी मुलाकात की इजाजूत नहीं दी गई। इससे साफ जाहिर है कि अभियुक्तों को अपनी सफाई पेश करने की सुविधाएं नहीं दी जा रही हैं। यही नहीं, कामरेड क्रान्तिकुमार को, जो हमारी डिफेंस कमेटी के लिए बहुत उपयोगी काम कर रहे थे और हमारी दैनिक आवश्यकताओं की चीजें हम तक पहुंचाने का काम भी कर रहे थे, एक फर्जी मुकदमा बनाकर जेल में डाल दिया गया है। मालूम हुआ है कि जब चटनी में गोली छुपाकर हमारे पास भेजने का नकली मुकदमा श्री क्रान्तिकुमार के खिलाफ साबित नहीं हो सका, तो उनके खिलाफ एक और मुकदमा दफा 124 ए में लाहौर से बाहर गुरदासपुर में बना दिया है।

मैं खुद कभी सारे वक्त के लिए वकील नहीं रख सकता। इसलिए मैं चाहता था कि मेरे अपने आदमी मुकदमे की सुनवाई के समय अदालत में मौजूद रहकर सारी कार्रवाई को देखा करें, लेकिन मेरे आदमियों को इजाज़त न देकर और उसका कोई स्पष्ट कारण बतलाए बिना लाला अमरदास एडवोकेट को ही जगह दे दी गई है।

इस तरह इन्साफ के नाम पर इस नाटक के खेले जाने को हम हरगिज पसन्द नहीं करते, क्योंकि इससे हमें अपनी सफाई पेश करने में कोई सुविधा या कोई लाभ नहीं मिलता। एक और बड़ी शिकायत हमें समाचार-पत्र न मिलने के बारे में है। हवालाती

(अंडर ट्रायल) कैदियों से दंड प्राप्त कैदियों जैसा सलूक नहीं किया जा सकता। इनको कम से कम एक दैनिक पत्र जरूर मिलना चाहिए। अंग्रेज़ी न जानने वालों के लिए भी हम एक दैनिक पत्र चाहते हैं। इसलिए अब हम विरोध के तौर पर अंग्रेज़ी दैनिक ‘ट्रिब्यून’ भी वापस कर रहे हैं। इन्हीं कारणों से 29 जनवरी, 1930 को हमने अदालत में न जाने का ऐलान किया था। इन असुविधाओं के दूर होते ही हमें अदालत आने में कोई आपत्ति न होगी।

आपके
वगैरह-वगैरह

✡✡

लाहौर षड्यंत्र केस को अंग्रेजी सरकार जल्दी से जल्दी समाप्त करना चाहती थी, पर भगतसिंह ने चतुरतापूर्वक सफाई देने का एक कूट-नैतिक विधान बना लिया था। इसका मोटा रूप यह था कि मुकदमा धीरे-धीरे सरके और उसकी कार्रवाई पत्रों में इम तरह छपे कि जनता में क्रान्तिकारी विचारों का उत्तेजनापूर्ण प्रसार-प्रचार हो। भगतसिंह की नीति सफल हो रही थी। सरकार इससे परेशान हो गई और उसने एक आर्डीनेंस (अध्यादेश) बनाया। इसमें अभियुक्तों की गैरहाजिरी में भी मुकदमा चालू रखने का अधिकार ट्रिब्यूनल को दिया गया था। गवर्नर-जनरल लार्ड इरविन ने अपने वक्तव्य में कहा कि यह आर्डीनेंस इसलिए बनाना पड़ा कि भूख हड़ताल के द्वारा अभियुक्तों ने मुकदमे का चलना असंभव बना दिया था। इस पर भगतसिंह ने अपनी और साथियों की ओर से यह पत्र गवर्नर जनरल को लिखा और उनकी स्थापना की धज्जियां उड़ा दीं। फरवरी, 1930।

हिज एक्सेलेन्सी दि गवर्नर-जनरल आफ इंडिया,
शिमला (पंजाब)।
श्रीमन्,

हमारे मुकदमे को जल्दी निपटाने के लिए जारी किये गये अध्यादेश का पूरा रूप हमें पढ़कर सुनाया जा चुका है। इसी अभिप्राय से पंजाब हाई कोर्ट के अधिकारक्षेत्र में एक ट्रिब्यूनल की नियुक्ति की गई है। अगर आपने इस मामले में अपनाये गये हमारे रवैये के बारे में जिक्र न किया होता और सारा उत्तरदायित्व हमारे ही कन्धों पर न डाल दिया होता, तो शायद हम अपनी जबान बंद रखते। परन्तु मौजूदा हालात में इस सम्बन्ध में हम अपना वक्तव्य देना बहुत जरूरी समझते हैं।

हम शुरू से ही यह जानते हैं कि सरकार जान-बूझकर हमारे बारे में गलतफहमी पैदा कर रही है। आखिरकार यह एक लड़ाई है और हम जानते हैं कि अपने शत्रुओं का मुकाबला केरने के लिए गलतफहमियों का जाल बनाना सरकार का सबसे बड़ा हथकंडा है। इस कमीनी हरकत को रोकने के लिए हमारे पास कोई तरीका नहीं. परन्तु कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें ध्यान में लेते हुए हमें कुछ कहने पर विवश होना पड़ा है।

आपने लाहौर षड्यन्त्र केस पर जारी किए गए अध्यादेश में हमारी भूख हड़ताल के संबंध में अपना वक्तव्य दिया है। आपने खुद स्वीकार किया है कि हम में से दो व्यक्तियों ने इस मामले के संबंध में स्पेशल मैजिस्ट्रेट पंडित श्री कृष्ण की अदालत में होने वाली खोजबीन के शुरू होने के कई हफ्ते पहले ही भूख हड़ताल शुरू कर दी थी। मामूली सूझबूझ रखने वाले आम आदमी के ध्यान में भी यह बात सहज में आ सकती है कि इस मुकदमे से उस भूख हड़ताल का कतई कोई सम्बन्ध नहीं है। भूख हड़ताल शुरू करने के कुछ विशेष कारण थे। इस हालत में सरकार को उन कारणों के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण देना पड़ता, जिनके आधार पर भूख हड़ताल की गई थी, और जब सरकार ने इस समस्या को सुलझाने के लिए कुछ व्यवस्थाएं करने की हामी भरी और 'प्रान्तीय जेल छानबीन समिति' (जेल इन्क्वायरी कमेटी) कायम कर दी, तभी हमने भूख हड़ताल खत्म की। लेकिन सबसे पहले

हमें यह बताया गया था कि वह मामला नवम्बर तक सुलझा दिया जायेगा। फिर वह दिसम्बर तक स्थगित कर दिया गया। जनवरी का मास भी बीत गया, परन्तु इस बात का कोई संकेत नहीं मिला कि सरकार वास्तव में इस सम्बन्ध में कुछ करेगी या नहीं। हमें लगा कि मामला रफा-दफा कर दिया गया है। इस स्थिति में हमने पूरे एक सप्ताह का नोटिस देकर 4 फरवरी, 1930 को फिर से भूख हड़ताल शुरू कर दी। उसके बाद ही सरकार ने मामले को अन्तिम रूप से शान्त करने के लिए कुछ कदम उठाये।

इस आशय से सरकार ने एक विज्ञप्ति जारी की और हमने भूख हड़ताल फिर खत्म कर दी। यहां तक कि हमने इस बात की भी प्रतीक्षा नहीं की कि सरकार अपने अन्तिम निर्णयों को लागू भी करती है या नहीं। लेकिन यह आज ही हमने महसूस किया है कि ब्रिटिश सरकार ऐसे साधारण मामलों में भी झूठ और फरेब का सहारा लेने से बाज न आई। वह विज्ञप्ति निश्चित व निर्णयात्मक आधारों पर है. परन्तु हमने देखा कि उस पर उल्टा ही अमल किया गया है। जो भी हो, इस मामले पर बहस करने का यह मौका नहीं है। अगर यह मामला फिर से उठा तो हम इससे भी कभी ज़रूर निबटेंगे, लेकिन हम ज़ोर देकर यह कहना चाहते हैं कि भूख हड़ताल का उद्देश्य इस्तगासे की कार्रवाई के खिलाफ कोई कदम नहीं था। ऐसे मामूली कारणों से हमने अपने पर इतने जुल्म सहन नहीं किए। यतीन्द्रनाथ दास ने इतनी साधारण बात के लिए अपने जीवन का बलिदान नहीं दिया। राजगुरु और सुखदेव ने मुकदमे से बचाव के लिए ही अपनी जानें खतरे में नहीं डाली थीं।

आप खुद और वे सभी जो इससे संबंधित हैं, बखूबी जानते हैं कि यह भूख हड़ताल नहीं थी, जिसकी वजह से आपको यह अध्यादेश जारी करना पड़ा। लेकिन बात कुछ और है जिसे सोचते हुए आपकी सरकार के दिमाग घूम गये। न तो यह इस मुकदमे में देरी के कारण हुआ और न ही ऐसी कोई संकट की स्थिति ही पैदा हुई जिसके कारण आपने बेकानून के इस कानून पर हस्ताक्षर किये। निश्चित ही इसके पीछे कुछ और है।

मगर हम यह बता देना चाहते हैं कि इन अध्यादेशों से हमारी भावनाओं को नहीं कुचला जा सकता। बेशक तुम कुछ इन्सानों को कुचल देने में कामयाबी हासिल कर लो, पर याद रखो तुम इस राष्ट्र को नहीं कुचल सकते। जहां तक इस अध्यादेश का सम्बन्ध है, हम इसे अपनी शानदार विजय समझते हैं। हमने शुरू से ही यह बताने की कोशिश की है कि तुम्हारा यह कानून एक रंगीन धोखा है। यह इन्साफ नहीं दे सकता। मगर अफसोस है कि जेल में जो सुविधाएं कानूनन और न्यायिक तौर पर अपराधियों के जायज अधिकार जो साधारण कैदियों को भी प्रदान की जाती हैं वे सुविधाएं भी हम राजनीतिक अपराधियों को नहीं दी गई। हम यही चाहते थे कि सरकार पर्दे से बाहर आ जाए और साफ-साफ कह दे कि राजनीतिक अपराधियों को बचाव का कोई मौका नहीं दिया जा सकता। यहां हमें लगता है, सरकार ने साफ-साफ यही बात स्वीकार की है। हम आपको और आपकी सरकार को इस स्पष्टवादिता के लिए बधाई देते हैं और अध्यादेश का स्वागत करते हैं।

आपके प्रतिनिधि स्पेशल-मैजिस्ट्रेट और इस्तगासा के सरकारी वकीलों द्वारा लगातार हमारे उचित व्यवहार के सबंध में साफ-साफ स्वीकारोक्ति के बावजूद, सिर्फ हमारे मुकदमे के अस्तित्व के बारे में ध्यान करते ही आपके दिमाग में जुबरदस्त खलबली मची हुई थी। हमारी इस शानदार सफलता का आश्वासन हमें इससे ज्यादा अच्छे ढंग से और कैसे मिल

सकता है!

आपके
वगैरह-वगैरह

✡✡

बचपन के साथी श्री जयदेव गुप्त के नाम भगतसिंह ने जेल से यह पत्र लिखा कि वे क्या-क्या सामान भेजें :

सेन्ट्रल जेल, लाहौर<br>3-6-1930

मेरे प्यारे श्री जयदेव

कृपा कर मेरा हार्दिक धन्यवाद स्वीकार कीजिए, कपड़े के उन जूतों और सफेद पालिश की शीशी के लिए जो आपने भेजे हैं। आपके शब्दों में, (जैसा कि श्री कुलबीर ने कहा) मैं आपको कुछ और चीजें लाने को यह पत्र लिख रहा हूं। मुझे विश्वास है कि आप इसे महसूस नहीं करेंगे। कृपया देख लें कि क्या आप श्री बी.के.दत्त के लिए कपड़े का एक और जूता भेजने की व्यवस्था कर सकते हैं (साइज नम्बर सात), लेकिन दुकानदार से वापसी की शर्त पर लेना, इनके पैर में फिट न आये! यह बात मैंने अपने लिए लिखते समय ही लिखी होती, पर श्री दत्त उस दिन सरल भाव (इजी मूड) में नहीं थे। लेकिन मेरे लिए इसे अकेले पहनना बहुत मुश्किल है। इसलिए मैं आशा करता है कि अगली मुलाकात के समय एक और जूता यहां होगा।

साथ ही कृपया एक ट्वैल शर्ट (कमीज) जिसका साइज छाती 34 और कमर 29 हो भेज दें। उस पर शेक्सपीरियन कालर हो और आधी आस्तीन हो। यह भी श्री दत्त के लिए चाहिए। क्या आप यह सोचेंगे कि हम जेल में भी अपने रहन-सहन के खर्चीले ढंग पर रोक नहीं लगा सके? अन्ततः यह आवश्यकताएं हैं, विलासिताएं नहीं। नहाने और व्यायाम करने के लिए किसी मुलायम कपड़े के बने दो लंगोट भी भेज दें और कपड़े धोने के साबुन की कुछ टिकियाएं भी। साथ ही कुछ बादाम और स्वान इंक की एक शीशी भी।

सरदार जी (पिता जी) के बारे में क्या खबर है? क्या वे लुधियाना से वापस आ गये हैं? इन दिनों में कचहरी बन्द रहेगी और मुकदमा आगे नहीं बढ़ेगा। यदि वे नहीं आये तो उन्हें लाने के लिए किसी को भेज दें। जो हो, उनके और मेरे मुकदमे का अन्त करीब ही है। कह नहीं सकता कि हमें एक-दूसरे को मिलने का और अवसर मिलेगा या नहीं, इसलिए उन्हें तुरन्त बुला लें, ताकि वे इस सप्ताह में मुझसे दो बार मिल सकें। यदि वे जल्दी ही नहीं आ रहे हैं तो कृपा कर कुलबीर और बहन जी को मुझसे मुलाकात के लिए कल या परसों भेज दें। मेरे मित्रों को मेरी याद दिलाना। क्या आप फारसी का एक 'कायदा' उर्दू अनुवाद सहित भेजने की व्यवस्था कर सकेंगे? चार आने की सूजी भी भेज दें।

तुम्हारा<br>भगतसिंह

✡✡

भगतसिंह ने यह पत्र श्री बटुकेश्न्श्र दत्त की बहन के नाम लिखा

सेन्ट्रल जेल, लाहौर
17 जुलाई, 1930

प्रिय बहन,

कल बटु ने स्वयं तुम्हें एक पत्र लिखा था, जिममें यह सूचित किया था कि जब तक तुम्हें दूसरा पत्र न मिले यहां मत आना। कल रात बट को किसी दूसरी जेल में भेज दिया गया। इस समय तक हमें उनके स्थान के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है। जो भी हो, मैं तुमसे प्रार्थना करूंगा कि तुम बनारस से लाहौर के लिए तब तक न चलना जब तक कि तुम्हें उनका पत्र न मिले।

उनकी जुदाई मेरे लिए भी असह्य है। आज यह पहला दिन है जब मैं अपने को पूरी तरह उद्विग्न पा रहा हूं और मेरे लिए हर मिनट एक बोझ बन गया है। सचमुच एक मित्र से जुदा होना, जो मुझे सगे भाइयों से भी अधिक प्रिय है, बहुत दुःखद है। खैर, हमें यह सब शान्ति से सहना है। मैं तुमसे धीरज रखने की प्रार्थना करता हूं। हौसले से काम लेना, घबराना नहीं, इसी में से कुछ अच्छी बात निकलेगी।

तुम्हारा
भगतसिंह

✿✿

श्री जयदेव गुप्त के नाम भगतसिंह का जेल से लिखा पत्र, नई पुस्तकें भेजने के लिए :

सेस्ट्रल जेल, लाहौर
24-7-30

मेरे प्यारे जयदेव,

कृपा कर मेरे नाम द्वारकादास लाइबेरी से लेकर निम्नलिखित पुस्तकें शनिवार को कुलबीर के साथ भेज देना—

मिलिटरिज्म (कार्ल लिब्कनेख्त)
हाई मेन फाइट (बी. रसेल)
सोवियतस एट वर्क
कोलैप्स आफ सेकिंड इंटरनेशनल
लेफ्ट विंग कम्युनिज्म
म्यूचुअल एड (प्रिंस क्रोपाटकिन)
फील्ड्सस, फैक्ट्रीज एंड वर्कशाप्स
सिविल वार इन फ्रांस (मार्क्स)
लैंड रिवोल्युशन इन रशा स्पाई (अप्टन सिंक्लेयर)

कृपा कर एक और पुस्तक पंजाब पब्लिक लाइब्रेरी से लेकर भेजने का कष्ट करें—हिस्टॉरिकल मैटीरियलिज्म (बुखारिन)। लाइब्रेरियन से यह भी पूछें कि बोर्स्टल जेल में कुछ पुस्तकें भेजी हैं या नहीं? उनके पास पुस्तकों का भयानक अकाल है। उन्होंने सुखदेव के भाई जयदेव के द्वारा पुस्तकों की एक लिस्ट भेजी थी, लेकिन अभी तक कोई पुस्तक नहीं मिली। अगर उनके पास लिस्ट न हो तो कृपा कर लाला फिरोज़चंद से कहना कि वे अपनी पसंद की कुछ दिलचस्प पुस्तकें भेज दें। इस रविवार को जब मैं वहां जाऊं तो उनके पास किताबें पहुंच चुकी होनी चाहिए। कृपाकर यह ध्यान रखना कि यह काम हर हालत में हो जाये।

इसके साथ ही डालिंग्स लिखित पीजेंट्स इन प्रासपैरिटी एंड डैट और इसी तरह की 2-3 किताबें डाक्टर आलम के लिए भी। आशा है आप इस कष्ट के लिए क्षमा करेंगे। मैं भविष्य में और कष्ट नहीं दूंगा, यह मेरा आश्वासन है। कृपा कर मेरे सब मित्रों को मेरी याद दिलाना। लज्जावती जी को मेरा आदर भाव दें। मुझे आशा है कि अगर दत्त की बहन आई, तो वे मुझसे मिलने के लिए आने का कष्ट करेंगी।

आदरभाव के साथ
भगतसिंह

✡✡

अनुज कुलबीरसिंह के नाम भगतसिंह का पत्र जेल से:

सेन्ट्रल जेल, लाहौर<br>16 सितम्बर 1930

ब्रादर अज़ीज़ कुलबीर जी,

सतश्रीअकाल।

आपको मालूम ही होगा कि बमूजिब अहकाम अफसरान बाला मेरी मुलाकातें बंद कर दी गई हैं। अन्दरीन हालात फिलहाल मुलाकात न हो सकेगी और मेरा खयाल है कि अनकरीब ही फैसला सुना दिया जायेगा। इसलिए किसी दिन जेल में आकर मेरी कुतब, दीगर कागज़ात, जेल के डिप्टी सुपरिंटेंडेंट के दफ्तर में भेज दूंगा, आकर ले जाना। न मालूम मुझे बार-बार यह ख्याल क्यों आ रहा है कि इसी हफ़ता के अन्दर-अन्दर या ज्यादा से ज्यादा इसी माह में फैसला और चालान हो जायेगा। इन हालात में अब तो किसी दूसरी जेल में मुलाकात हो तो हो, यहां तो उम्मीद नहीं।

वकील को भेज सको तो भेजना। मैं प्रिवी कौंसिल के सिलसिले में एक जरूरी बात दरयाफ्त करना चाहता हूं। वालिदा साहबा को तसल्ली देना, घबराएं नहीं।

आपका भाई<br>भगतसिंह

✡✡

अनुज श्री कुलबीर सिंह के नाम भगतसिंह का दूसरा पत्र; जेल से:

सेन्ट्रल जेल, लाहौर
25 सितम्बर 1930

ब्रादर अज़ीज़ कुलबीरसिंह जी,
सतश्रीअकाल।

मुझे यह मालूम करके कि एक दिन आप वालिदा को साथ लेकर आये और मुलाकात की इजाजूत न मिलने पर मायूस लौट गये, बड़ा अफसोस हुआ। आखिर तुम्हें तो मालूम हो चुका था कि जेल वाले मुलाकात की इजाज़त नहीं देते। फिर वालिदा को क्यों साथ लाये? मैं जानता हूं वो इम वक्त सख्त घबराई हुई हैं, मगर इस घबराहट और परेशानी का फायदा? नुकसान जरूर है, क्योंकि जब से मुझे मालूम हुआ कि वो बहुत रो रही हैं मुझे खुद भी बेचैनी हो रही है। घबराने की कोई बात नहीं, और इससे कुछ हासिल भी नहीं। सब हौसला से हालात का मुकाबला करें। आखिर दुनिया में दूसरे लोग भी तो हजारों मुसीबतों में फंसे हुए हैं. और फिर लगातार एक साल मुलाकातें कर तबियत सेर नहीं हुई, तो दीगर मजीद मुलाकातों से भी तसल्ली न हो सकेगी। मेरा खयाल है कि फैसला और चालान के बाद मुलाकातें खुल जायेंगी, लेकिन अगर फर्ज़ किया जाए कि फिर भी मुलाकात की इजाजत न मिले तो घबराने का क्या फायदा!

तुम्हारा
भगतसिंह

✿✿

लाहौर षड्यंत्र केस में, जिसमें भगतसिंह को फांसी की सजा मिली; अभियुक्तों ने उन पर लगाये अभियोगों के सम्बन्ध में कोई सफाई नहीं दी और अदालत के प्रति पूरी तरह अवज्ञा का भाव रखा। यह नीति भगतसिंह की ही थी और उनके कई साथी बहुत बहस के बाद ही नहीं, अदालत में पुलिस द्वारा पिटाई का एक अनुभव कर लेने के बाद सहमत हुए थे। इस केस में अभियुक्त 4-5 दिन ही अदालत में आये थे। बाद में उनकी गैरहाज़िरी में ही मुकदमे की सुनवाई होती रही थी।

भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह ने अदालत में एक प्रार्थना-पत्र दिया कि भगतसिंह को सांडर्स वध के मामले में निर्दोष सिद्ध करने के लिए कई अकाट्य प्रमाण हैं, इसलिए भगतसिंह को सफाई पेश करने का अवसर दिया जाए। इस पर भगतसिंह ने अपने पिता को यह पत्र लिखा।

पूज्य पिता जी,

मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि आपने स्पेशल ट्रिब्यूनल को मेरे बचाव के लिए एक प्रार्थना-पत्र भेजा है। यह समाचार मेरे लिए इतना दुखदायी था कि मैं इसे शान्त रहकर सहन नहीं कर सकता। इस समाचार ने मेरे हृदय की सारी शान्ति समाप्त कर दी। मेरी समझ में नहीं आता कि वर्तमान स्थिति में आप इस विषय पर किस प्रकार ऐसा प्रार्थना-पत्र दे सकते हैं?

आपका बेटा होने के नाते मैं आपकी पैतृक भावनाओं एवं इच्छाओं का पूरा सम्मान करता हूं, परन्तु इसके साथ ही मैं समझता हूं कि आपको मेरे साथ परामर्श किये बिना मेरे विषय में कोई प्रार्थना-पत्र देने का अधिकार न था।

आप जानते हैं कि राजनैतिक क्षेत्र में मेरे विचार आपसे सर्वथा भिन्न हैं। मैं आपकी सहमति या असहमति का विचार किये बिना ही सैदव स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करता रहा हूं। मुझे विश्वास है कि आपको यह बात स्मरण होगी कि आप आरंभ में ही मुझे यह बात मना लेने के लिए प्रयत्न करते रहे हैं कि मैं अपना मुकदमा समझदारी से लड़े एवं अपना बचाव ठीक रूप से उपस्थित करू। यह बात भी आपकी जानकारी में है कि मैं सैदव इसका विरोध करता रहा हूं। मैंने कभी अपने बचाव के लिए स्पष्टीकरण देने की इच्छा प्रकट नहीं की और न मैंने कभी इस बात पर गंभीरतापूर्वक विचार ही किया है। यह बात एक गलत दृष्टिकोण का परिणाम थी या मेरे पास इन कार्यो के प्रमाण में उपस्थित करने के लिए कोई तर्क न थे, यह एक ऐसी बात है जिस पर इस समय विचार नहीं किया जा सकता।

आप जानते हैं कि इस मुकदमे में हम एक निश्चित नीति पर चल रहे हैं। मेरा प्रत्येक कार्य, उस नीति से मेरे सिद्धांतों से एवं हमारे कार्यक्रम से सामंजस्य रखते हुए होना चाहिए। आज परिस्थिति सर्वथा भिन्न है; परन्तु यदि परिस्थति इसके अतिरिक्त कुछ और होती, तो भी मैं अन्तिम व्यक्ति होता जी अपना बचाव उपस्थित करता। इस सारे मुकदमे में मेरे सामने एक ही विचार था और वह यह कि यह जानते हुए भी कि हमारे विरुद्ध भयानक अपराध लगाये गये हैं, हम उस ओर से पूर्णतया अवहेलना की वृत्ति बनाये रखें।

मेरा यह दृष्टिकोण रहा है कि समस्त राजनैतिक कार्यकर्ताओं को ऐसी दशा में अदालत की अवहेलना और उपेक्षा दिखानी चाहिए और उनको जो कठोर से कठोर दण्ड दिया जाए, वह उन्हें हंसते-हंसते सहन करना चाहिए। इस पूरे मुकदमे के बीच हमारी नीति इसी सिद्धांत पर आधारित रही है। हम ऐसा करने में सफल हुए हैं या नहीं, यह निर्णय करना मेरा कार्य नहीं है। हां. हम स्वार्थपरता को छोड़कर अपना काम करते रहे हैं।

वायसराय ने लाहौर षड्यंत्र केस आर्डीनेंस नारी करते हुए उसके साथ जो बयान जारी किया था, उसमें उन्होंने कहा था कि इस षड़यंत्र के अपराधी शान्ति, सुव्यवस्था एवं कानून को समाप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इससे जो वातावरण उत्पन्न हुआ, उसने हमें यह अवसर दिया कि हम जनता के समक्ष यह बात उपस्थित करें कि वह यह देखे कि शान्ति, सुव्यवस्था और कानून समाप्त करने का प्रयास हम कर रहे हैं या हमारे विरोधी। इस बात पर विभिन्न दृष्टिकोण हो सकते हैं।

संभवतया आप भी उन लोगों में से एक हैं, जो इस बात में हमसे विरुद्ध मत रखते हैं, परन्तु इसका यह आशय नहीं है कि आप मेरी ओर से ऐसे प्रयत्न बिना मेरे साथ परामर्श किये करते रहें। मेरा जीवन इतना मूल्यवान नहीं है, जितना आप समझते हैं। कम से कम मेरे लिए इस जीवन का इतना महत्त्व नहीं है कि इसे सिद्धांतों की अमूल्य निधि बलिदान करके बचाया जाये। मेरे और साथी भी हैं, जिनके अभियोग इतने ही भारी हैं, जितना कि यह मेरा अभियोग। हमने एक सम्मिलित नीति अपनाई है और हम एक-दूसरे के साथ कंधा मिलाकर अन्तिम क्षण तक खड़े रहेंगे। हमें इस बात की चिन्ता नहीं है कि हमें व्यक्तिगत रूप में इस निश्चय का कितना मूल्य चुकाना पड़ता है।

पिता जी! मैं बड़ी चिन्ता अनुभव कर रहा हूं। मुझे डर है कि आप पर दोष लगाते हुए या इससे भी अधिक आपके इस कार्य की निन्दा करते हुए मैं कहीं सभ्यता की परिधि को न लांघ जाऊं तथा मेरे शब्द अधिक कठोर न हो जायें। फिर भी मैं स्पष्ट शब्दों में इतनी बातें अवश्य कहूंगा कि यदि कोई दूसरा व्यक्ति मेरे प्रति इस प्रकार का बर्ताव करता, तो में उसे देशद्रोही से कुछ कम न समझता, परन्तु आपके लिए मैं यह बात नहीं कह सकता।

बस, इतना ही कहूंगा कि यह एक कमजोरी थी, निम्न कोटि की मानसिक दुर्बलता। यह एक ऐसा समय था, जब हम सबकी परीक्षा हो रही थी। पिताजी, मैं यह कहना चाहता हूं कि आप इस परीक्षा में असफल रहे हैं। मैं जानता हूं कि आपने अपना समस्त जीवन भारत की स्वतन्त्रता के लिए न्योछावर कर दिया है, परन्तु इस महत्त्वपूर्ण घड़ी में आपने ऐसी दुर्बलता क्यों दिखाई, मैं यह बात समझ नहीं पाया।

अन्त में मैं आपको और अपने दूसरे मित्रों एवं मेरे मुकदमे में सहानुभूति रखने वाले सभी व्यक्तियों को यह बता देना चाहता हूं कि मैं आपके इस कार्य को अच्छी दृष्टि से नहीं देखता। मैं आज भी किसी मूल्य पर अपना बचाव उपस्थित करने के पक्ष में नहीं हूं। यदि न्यायालय हमारे कुछ साथियों की ओर से स्पष्टीकरण इत्यादि के बारे में उपस्थित की गई प्रार्थना स्वीकार कर लेता, तो भी मैं कोई स्पष्टीकरण उपस्थित न करता। (भूख हड़ताल के दिनों में मैंने अदालत को जो प्रार्थना–पत्र दिया था और उन दिनों में मैंने जो भेंट दी थी, उसका अर्थ गलत समझा गया और समाचार पत्रों में यह प्रकाशित कर दिया गया कि मैं अपना स्पष्टीकरण देना चाहता हूं। इसके विपरीत मैं तो किसी भी अवसर पर बचाव

उपस्थित करने के लिए सहमत नहीं था) आज भी मेरे विचार वही हैं. जो पहले थे। बोर्स्टल जेल में बन्दी मेरे साथी इस बात को मेरी ओर से पार्टो के मल विद्रोह एवं विश्वासघात समझते होंगे। मुझे उनके सामने अपनी स्थिति स्पष्ट करने का अवसर भी नहीं मिल सकेगा।

मैं चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में जो कठिनाइयां उत्पन्न हो गई हैं, उनके विषय में लोगों को वास्तविकता का ज्ञान हो जाये। अत: मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप शीघ्र ही यह पत्र प्रकाशित करा दें।

आपका ताबेदार
भगतसिंह

✡✡

फांसी की सज़ा सुनने के बाद मुलतान जेल में बंदी अपने साथी बटुकेश्वर दत्त के नाम नवम्बर, 1930 का भगतसिंह का पत्र:

सेन्ट्रल जेल, लाहौर
नवम्बर, 1930

प्यारे भाई,

मुझे दंड सुना दिया गया है और फांसी का आदेश हुआ है। इन कोठरियों में मेरे अतिरिक्त फांसी की प्रतीक्षा करने वाले बहुत-से अपराधी हैं। ये लोग यही प्रार्थना कर रहे हैं कि किसी तरह फांसी से बच जाएं परन्तु उनके बीच शायद मैं ही एक ऐसा आदमी है जो बड़ी बेताबी से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूं जब मुझे अपने आदर्श के लिए फांसी के फन्दे पर झूलने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

मैं खुशी के साथ फांसी के तख्ते पर चढ़कर दुनिया को यह दिखा दूंगा कि क्रान्तिकारी अपने आदर्शों के लिए कितनी वीरता से बलिदान दे सकते हैं।

मुझे फांसी का दंड मिला है, किन्तु तुम्हें आजीवन कारावास का दंड मिला है। तुम जीवित रहोगे और तुम्हें जीवित रहकर दुनिया को यह दिखाना है कि क्रान्तिकारी अपने आदर्शों के लिए केवल मर ही नहीं सकते बल्कि जीवित रहकर हर मुसीबत का मुकाबला भी कर सकते हैं। मृत्यु सांसारिक कठिनाइयों से मुक्ति प्राप्त करने का साधन नहीं बननी चाहिए बल्कि जो क्रान्तिकारी संयोगवश फांसी के फंदे से बच गए हैं, उन्हें जीवित रहकर दुनिया को यह दिखा देना चाहिए कि वे न केवल अपने आदर्शों के लिए फांसी पर चढ़ सकते हैं, बल्कि जेलों की अंधकारपूर्ण छोटी कोठरियों में घुल -घुलकर निकृष्टतम दर्जे के अत्याचारों को सहन भी कर सकते हैं।

तुम्हारा
भगतसिंह

✿✿

भगतसिंह और सुखदेव दोनों ही लाहौर षड्यंत्र केस के सिलसिले में जेल में बन्द थे अदालत से दोनों को फांसी की सजा का हुक्य हो चुका था। दोनों मौत के फंदे की प्रतीक्षा कर रहे थे। देश में फांसी की सजा के विरुद्ध क्रोध उफन उठा था। सुखदेव अति भाबुक श्रेणी के मनुष्य थे। उनके मन में आया कि हमारी फांसी रुक जायेगी और हमें आजन्म कारावास का दंड भोगना पड़ेगा। 14 वर्ष काले पानी में रहकर हम निर्जीव हो जाएंगे इस स्थिति में जीने से अच्छा है कि मैं आत्महत्या कर लूं। उन्होंने अपना विचार भगतसिंह को लिख भेजा। उसके उत्तर में भगतसिंह ने उन्हें यह पत्र लिखा।

# कष्टों से भागना कायरता है

प्रिय भाई,

मैंने आपके पत्र को कई बार ध्यानपूर्वक पढ़ा। मैं अनुभव करता हूं कि बदली हुई परिस्थितियों ने हम पर अलग-अलग प्रभाव डाला है। जिन बातों से जेल के बाहर घृणा करते थे, वे आपके लिए अब अनिवार्य हो चुकी हैं। इसी प्रकार मैं जेल से बाहर जिन बातों का विशेष रूप से समर्थन करता था, वे अब मेरे लिए विशेष महत्त्व नहीं रखतीं। उदाहरणार्थ, मैं व्यक्तिगत प्रेम का विशेष रूप से मानने वाला था, परन्तु अब इस भावना का मेरे हृदय एवं मस्तिष्क में कोई विशेष स्थान नही रहा। बाहर आप इसके कड़े विरोधी थे, परन्तु इस सम्बन्ध में अब आपके विचारों में भारी परिवर्तन एवं क्रान्ति आ चुकी है। आप इसे मानव-जीवन का एक अत्यन्त आवश्यक एवं अनिवार्य अंग अनुभव करते हैं और इस अनुभूति से आपको एक प्रकार का आनन्द भी प्राप्त हुआ है।

आपको याद होगा कि एक दिन मैंने आत्महत्या के विषय पर आपसे चर्चा की थी, तब मैंने आपको बताया था, कई परिस्थितियों में आत्महत्या उचित हो सकती है, आपने मेरे इस दृष्टिकोण का विरोध किया था। मुझे उस चर्चा का समय एवं भली प्रकार स्मरण है। हमारी यह बात शहनशाही कुटिया में सायंकाल के समय हुई थी। आपने मजाक के रूप में हंसते हुए कहा था कि इस प्रकार की कायरता का कार्य कभी उचित नहीं माना जा सकता। आपने कहा था कि इस प्रकार का कार्य भयानक और घृणित है, परन्तु इस विषय पर भी मैं देखता हूं कि आपकी राय सर्वथा बदल चुकी है। अब आप उसे कुछ अवस्थाओं में न केवल उचित, वरन् अनिवार्य एवं आवश्यक अनुभव करते हैं। मेरी इस विषय में अब वही राय है, जो पहले आपकी थी, अर्थात् आत्महत्या एक घृणित अपराध है। यह पूर्णत: कायरता का कार्य है। क्रान्तिकारी का तो कहना ही क्या, कोई भी मनुष्य ऐसे कार्य को उचित नहीं ठहरा सकता।

आप कहते हैं कि आप यह नहीं समझ सके कि केवल कष्ट-सहन करने से आप अपने देश की सेवा किस प्रकार कर सकते हैं। आप जैसे व्यक्ति की ओर से ऐसा करना बडे आश्चर्य

की बात है; क्योंकि नौजवान भारत सभा के ध्येय ‘सेवा द्वारा को सहन करना एवं बलिदान करना’ को हमने सोच-समझकर कितना प्यार किया था। मैं यह समझता हूं कि आपने अधिक से अधिक संभव सेवा की। अब वह समय है कि जो कुछ आपने किया है, उसके लिए कष्ट उठायें। दूसरी बात यह है कि यही वह अवसर है, जब आपको सम्पूर्ण जनता का नेतृत्व करना है।

मानव किसी भी कार्य को उचित मानकर ही करता है, जैसे कि हमने लेजिस्लेटिव असेम्बली में बम फेंकने का कार्य किया था। कार्य करने के पश्चात् उसका परिणाम और उसका फल भोगने की बारी आती है। क्या आपका यह विचार है कि यदि हमने दया के लिए गिड़गिड़ाते हुए दंड से बचने का प्रयत्न किया होता, तो हमारा यह कार्य उचित होता? नही, इसका प्रभाव लोगों पर उल्टा होता। अब हम अपने लक्ष्य में पूर्णता सफल हुए हैं।

बन्दी होने के समय हमारी संस्था के राजनैतिक बन्दियों की दशा अत्यन्त दयनीन थी। हमने उसे सुधारने का प्रयास प्रारंभ कर दिया। मैं आपको पूरी गंभीरता से बताता हूं कि हमें यह विश्वास था कि हम बहुत कम समय के भीतर ही मर जायेंगे। हमें उपवास की स्थिति में कृत्रिम रीति से भोजन दिये जाने का न तो ज्ञान ही था, न हमें यह विचार सूझता ही था। हम तो मृत्यु के लिए तैयार थे। क्या आपका यह अभिप्राय है कि हम आत्महत्या करना चाहते थे? नहीं, प्रयत्नशील होना एवं श्रेष्ठ और उत्कृष्ट आदर्श के लिए जीवन दे देना कदापि आत्महत्या नही कही जा सकती। हमारे मित्र (श्री यतीन्द्रनाथ दास) की मृत्यु तो स्पृहणीय है। क्या आप इसे आत्महत्या कहेंगे? हमारा कष्टों को सहना फल लाया। समस्त देश में एक विराट और सर्वव्यापी आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। हम अपने लक्ष्य में सफल हुए। इस प्रकार के संघर्ष में मरना एक आदर्श मृत्यु है।

इसके अतिरिक्त हममें से जिन लोगों को यह विश्वास है कि उनको मृत्युदण्ड दिया जाएगा, उनको धैर्यपूर्वक उस दिन की प्रतीक्षा करनी चाहिए जब यह सजा सुनाई जाएगी और तत्पश्चात् उन्हें फांसी दी जाएगी। यह मृत्यु भी सुन्दर होगी, परन्तु आत्महत्या करना केवल कुछ दुःखों से बचने के लिए अपने जीवन को समाप्त कर देना, तो कायरता है। मैं आपको बताना चाहता हूं कि आपत्तियां व्यक्ति को पूर्ण बनाने वाली होती हैं। मैं और आप, वरन् मैं कहूंगा हममें से किसी ने भी किंचित कष्ट सहन नहीं किया है। हमारे जीवन का यह भाग तो अभी आरंभ होता है।

आपको यह स्मरण होगा कि अनेक बार इस विषय पर हमने बातचीत की है कि रूसी साहित्य में जो वास्तविकता प्रत्येक स्थान पर मिलती है, यह हमारे साहित्य में कदापि नहीं दिखाई देती। हम उनकी कहानियों में कष्टों और दुखदाई स्थितियों को बहुत पसन्द करते हैं, परन्तु कष्ट-सहन की उस भावना को अपने भीतर अनुभव नहीं करते। हम उनके उन्माद और उनके चरित्र की असाधारण ऊंचाइयों के प्रशंसक हैं, परन्तु इसके कारणों पर सोच-विचार करने की कभी चिन्ता नहीं करते। मैं कहूंगा कि केवल आपत्तियां सहन करने के उल्लेख ने ही उन कहानियों में सहायता, दर्द की गहरी टीस और उनके चरित्र तथा साहित्य में ऊंचाई उत्पन्न की है। हमारी दशा उस समय दयनीय और हास्यास्पद हो जाती है, जब हम अपने जीवनने में रहस्यवाद को अकारण ही प्रविष्ट कर लेते हैं, यद्यपि इसके लिए कोई प्राकृतिक या ठोस आधार नहीं होता, हमारे जैमे व्यक्तियों को, जो प्रत्येक दृष्टि से

क्रान्तिकारी होने का गर्व करते हैं, सदैव हर प्रकार से उन आपत्तियों, चिन्ताओं, दुःखों और कष्टों को सहन करने के लिए तत्पर रहना चाहिए, जिनको हम स्वयं आरम्भ किये संघर्ष के द्वारा आमंत्रित करते हैं. एवंम जिनके कारण हम अपने-आपको क्रान्तिकारी कहते हैं।

मैं आपको बताना चाहता हूं कि जेलों में और केवल जेलों में ही कोई व्यक्ति अपराध एवं पाप जैसे महान् सामाजिक विषय का प्रत्यक्ष अध्ययन करने का अवसर प्राप्त कर सकता है। मैंने इस विषय का कुछ साहित्य पढ़ा है और जेल ही ऐसे विषयों का स्वाध्याय करने का सबसे अधिक उपयुक्त स्थान है। स्वाध्याय का सर्वश्रेष्ठ भाग है : स्वयं कष्टों को सहना।

आप भली प्रकार जानते हैं कि रूस में राजनैतिक बन्दियों का बन्दीगृहों में आपत्तियां सहन करना ही ज़ारशाही का तख्ता उलटने के पश्चात् उनके द्वारा जेलों के प्रबन्ध में क्रान्ति लाये जाने का सबसे बड़ा कारण था। क्या भारत को ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता नहीं है, जो इस विषय से पूर्णतया परिचित हों और इस समस्या का निजी अनुभव रखते हों? केवल यह कह देना कि दूसरा कोई इस काम को कर लेगा या इस कार्य को करने के लिए बहुत लोग हैं, किसी प्रकार भी उचित नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार जो लोग क्रान्तिकारी क्षेत्र के कार्यों का भार दूसरे लोगों पर छोड़ने को अप्रतिष्ठापूर्ण एवं घृणित समझते हैं, उन्हें पूरी लगन के साथ वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष आरम्भ कर देना चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे उन विधियों का उल्लंघन करें, परन्तु उन्हें औचित्य का ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि अनावश्यक एवं अनुचित प्रयत्न कभी भी न्यायपूर्ण नहीं माना जा सकता। इस प्रकार का आन्दोलन क्रान्ति के कार्यकाल को बहुत सीमा तक कम कर देगा। जितने आन्दोलन अब तक आरंभ हुए हैं. उन सबसे पृथक रहने के लिए आपको जो तर्क दिये हैं, मैं उन्हें समझने में असमर्थ हूं। कुछ मित्र ऐसे हैं, जो या तो मूर्ख हैं या नासमझ। वे आपके इस व्यवहार को (जिसे वे स्वयं कहते हैं कि हमें किंचित् भी नहीं समझ सकते, क्योंकि आप उनसे बहुत ऊंचे और उनकी समझ से बहुत परे हैं) अनोखा और अद्भुत समझते हैं।

वास्तव में यदि आप यह अनुभव करते हैं कि बन्दीगृह का जीवन वास्तव में अपमानपूर्ण है. तो आप उसके विरुद्ध आन्दोलन करके उसे सुधारने का प्रयास क्यों नहीं करते? संभवतया आप यह कहेंगे कि यह संघर्ष सफल नहीं हो सकता, परन्तु यह तो यही तर्क है, जिसकी आड़ लेकर साधारणतया निर्बल लोग प्रत्येक आन्दोलन से बचना चाहते हैं। यह वह उतर है, जिसे हम ‘उन लोगों से सुनते रहे हैं, जो जेल से बाहर क्रान्तिकारी प्रयत्नों में सम्मिलित होने से जान बचाना चाहते थे। क्या आज यही उत्तर मैं आपके मुख से सुनूंगा? कुछ मुठ्ठी-भर कार्यकताओं के आधार पर संगठित हमारी पार्टी अपने लक्ष्यों और आदर्शों की तुलना में क्या कर सकती थी? क्या हम इससे यह निष्कर्ष निकालें कि हमने इस काम के प्रारम्भ करने में नितान्त भूल की है? नहीं, इस प्रकार का परिणाम निकालना उचित नहीं होगा। इससे तो उस व्यक्ति की भीतरी निर्बलता प्रकट होती है, जो इस प्रकार सोचता है।

आगे चलकर आप लिखते हैं कि चौदह वर्ष तक बन्दीगृह के कष्टों से भरपूर जीवन बिताने के पश्चात् किसी व्यक्ति से यह आशा नहीं की जा सकती कि उस समय भी उसके विचार वही होंगे, जो जेल जाने से पूर्व थे, क्योंकि जेल का वातावरण उसके समस्त विचारों को रौंदकर कुचल देगा। क्या मैं आपसे पूछ सकता हूं कि क्या जेल से बाहर का

वातावरण हमारे विचारों के अनुकुल था? फिर भी असफलताओं के कारण क्या हम उसे छोड़ सकते थे? क्या आपका आशय यह है कि यदि हम इस क्षेत्र में न उतरे होते, तो कोई भी क्रान्तिकारी कार्य कदापि नहीं हुआ होता? यदि ऐसा है तो आप भूल कर रहे हैं। यद्यपि यह ठीक है कि हम भी वातावरण को बदलने में बड़ी सीमा तक सहायक सिद्ध हुए हैं, तथापि हम तो केवल अपने समय की आवश्यकता की उपज हैं।

मैं तो यह भी कहूंगा कि साम्यवाद का जन्मदाता मार्क्स वास्तव में इस विचार को जन्म देने वाला नहीं था। असल में यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति ने ही एक विशेष प्रकार के विचारों वाले व्यक्ति उत्पन्न किये थे। उनमें मार्क्स भी एक था। हां, अपने स्थान पर मार्क्स भी निस्सन्देह कुछ सीमा तक समय के चक्र को एक विशेष प्रकार की गति देने में अवश्य सहायक सिद्ध हुआ।

मैंने (और आपने भी) इस देश में समाजवाद और साम्यवाद के विचारों को जन्म नहीं दिया, वरन् यह तो हमारे ऊपर हमारे समय एवं परिस्थिति के प्रभाव का परिणाम है। निस्सन्देह हमने इन विचारों का प्रचार करने के लिए कुछ साधारण एवं तुच्छ कार्य अवश्य किये हैं, इसलिए मैं कहता हूं कि जब हमने इस प्रकार एक कठिन कार्य को हाथ में ले ही लिया है, तो हमें उसे जारी रखना चाहिए और आगे बढ़ाना चाहिए। आपत्तियों से बचने के लिए आत्महत्या कर लेने से जनता का मार्गदर्शन नहीं होगा, वरन् यह तो एक प्रतिक्रियावादी कार्य होगा।

जेल के नियमों के अनुसार जीवन की निराशाओं. दबाव और हिंसा के असीम परीक्षायुक्त वातावरण का विरोध करते हुए हम कार्य करते रहे। जिस समय हम अपना कार्य करते थे, उस समय नाना प्रकार से हमें कठिनाइयों का निशाना बनाया जाता था। यहां तक कि जो लोग अपने आपको महान क्रान्तिकारी कहने का गौरव अनुभव करते थे, वे भी हमको छोड़ गये। क्या ये परिस्थितियां असीम परीक्षायुक्त न थीं? फिर अपने आन्दोलन एयं प्रयासों को जारी रखने के लिए हमोर पास क्या कारण और तर्क था?

क्या स्वयं यही तर्क हमारे विचारों को शक्ति नहीं देता है? और क्या ऐसे क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं के उदाहरण हमारे सामने नहीं हैं, जो जेलों से दंड भोग कर लौटे और अब भी कार्य कर रहे हैं? यदि बाकुनिन ने आपके समान सोच विचार किया होता, तो वह प्रारम्भ में ही आत्महत्या कर लेता। आज आपको असंख्य ऐसे क्रान्तिकारी दिखाई देते हैं, जो रूसी राज्य में उत्तरदायी पदों पर विराजमान हैं और जिन्होंने अपने जीवन का अधिकतर भाग दण्ड भोगते हुए जेलों में बिताया है। मनुष्य को अपने विश्वासों पर दृढ़तापूर्वक अडिग रहने का प्रयत्न करना चाहिए। कोई नहीं कह सकता कि भविष्य में क्या घटना होने वाली है।

क्या आपको याद है कि यब हम इस विषय पर चर्चा कर रहे थे कि हमारी बम-फैक्टरियों में अत्यन्त तीव्र एयं प्रभावकारी विष भी रखा जाना चाहिए तो आपने बड़ी दृढ़ता से इसका विरोध किया था। आप इस विचार से ही घृणा करते थे। आपको इस पर विश्वास नहीं था। फिर अब क्या हुआ? यहां तो ऐसी विकट और जटिल परिस्थितियां भी नहीं है। मुझे तो इस प्रश्न पर विचार करने में भी घृणा होती है। आपको उस मनोवृति से भी घृणा थी, जो आत्महत्या करने की अनुमति देती है। आप मुझे यह कहने के लिए क्षमा करें कि यदि आपने अपने बन्दी बनाये जाने के समय ही इन विचारों के अनुकूल कार्य किया

होता अर्थात् आपने विष खाकर उस समय आत्महत्या कर ली होती) तो आपने क्रान्तिकारी कार्य की बहुत बड़ी सेवा की होती, परन्तु इस समय तो इस कार्य पर विचार करना भी हमारे लिए हानिकारक है।

एक और विशेष बात, जिस पर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं यह पत्र है कि हम लोग ईश्वर, पुनर्जन्म, नरक-स्वर्ग, दण्ड एयै पारितोषिक, अर्थात् भगवान द्वारा किये जाने वाले जीवन के हिसाब आदि में कोई विश्वास नहीं रखते। अत: हमें जीवन एवं मृत्यु के विषय में भी नितान्त भौतिकवादी रीति से सोचना चाहिए। एक दिन जब मुझे पहचाने जाने के लिए दिल्ली से यहां लाया गया था, तो गुप्तचर-विभाग के कुछ अधिकारियों ने मेरे पिताजी की उपस्थिति में मुझसे इस विषय पर बातचीत की थी। उन्होंने कहा था कि मैं कोई भेद खोलने और इस प्रकार अपना जीवन बचाने के लिए तैयार नहीं है इससे यह सिद्ध होता है कि मैं जीवन से बहुत दुःखी हूं। उनका तर्क था कि मेरी यह मृत्यु तो आत्महत्या के समान होगी, परन्तु मैंने उनको उत्तर दिया था कि मेरे जैसे विश्वास और विचारों वाला व्यक्ति ध्यर्ष में ही मरना कदापि सहन नहीं कर सकता। हम तो अपने जीवन का अधिक से अधिक मूल्य प्राप्त करना चाहते हैं। हम मानवता की अधिक से अधिक संभव सेवा करना चाहते हें। विशेषकर मेरे जैसा भला मनुष्य, जिसका जीवन किसी भी रूप में दुःखी या चिन्तित नहीं है, किसी समय भी, आत्महत्या करना तो दूर रहा, उसका विचार भी हदय में लाना ठीक नहीं समझता। वही बात मैं इस समय आपसे कहना चाहता हूं।

आशा है आप मुझे अनुमति देंगे कि मैं आपको यह बताऊं कि मैं अपने बारे में क्या सोचता हूं। मुझे अपने लिए मृत्युदण्ड सुनाए जाने का अटल विश्वास है। मुझे किसी प्रकार की पूर्ण क्षमा या नम्र व्यवहार की तनिक भी आशा नहीं है। यदि कोई क्षमा हुई भी, तो पूर्णत: सबके लिए न होगी, वरन वह भी हमारे अतिरिक्त अन्य लोगों के लिए नितान्त सीमित एवं कई बन्धनों से जकड़ी हुई होगी। हमारे लिए तो न क्षमा हो सकती है और न वह होगी ही। इस पर भी मेरी इच्छा है कि हमारी मुक्ति का प्रस्ताव सम्मिलित रूप में और विश्वव्यापी हो और उसके साथ ही मेरी अभिलाषा यह है कि जब यह आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर पहुंचे, तो हमें फांसी दे दी जाये। मेरी यह इच्छा है कि यदि कोई सम्मानपूर्ण और उचित समझौता होना कभी संभव हो जाये. तो हमारे जैसे व्यक्तियों का मामला उसके मार्ग में कोई रुकावट या कठिनाई उत्पन्न करने का कारण न बने। जब देश के भाग्य का निर्णय हो रहा हो तो व्यक्तियों के भाग्य को पूर्णतया भुला देना चाहिए। हम क्रान्तिकारी होने के नाते अतीत के समस्त अनुभवों से पूर्णतया अवगत हैं। इसलिए हम नहीं मान सकते कि हमारे शासकों और विशेषकर अंग्रेज़ जाति की भावनाओं में इस प्रकार का आश्चर्यजनक परिवर्तन उत्पन्न हो सकता है। इस प्रकार का परिवर्तन क्रान्ति के बिना संभव ही नहीं है। क्रान्ति तो केवल सतत कार्य करते रहने से, प्रयत्नों से, कष्ट सहन करने से एवं बलिदानों से ही उत्पन्न की जा सकती है, और की जाएगी।

जहां तक मेरे दृष्टिकोण का सम्बन्ध है, मैं तो केवल उसी दशा में सबके लिए सुविधाओं और क्षमादान का स्वागत कर सकता हूं, जब उसका प्रभाव स्थायी हो और देश के लोगों के हृदयों पर हमारी फांसियों से कुछ अमिट चिह अंकित हो जायें। बस यही; इससे

अधिक कुछ नहीं।

✿✿

लाला रामसरन दास लाहौर षड्यंत्र केस के अभियुक्तों में से एक थे। इससे पूर्व गदर पार्टी आन्दोलन के सम्बन्ध में उन्हें आजन्म कारावास की सजा हुई थी। तभी दक्षिण भारत की किसी जेल में उन्होंने अंग्रेज़ी में एक काव्य-पुस्तक लिखी, जिसका नाम था: 'ड्रीम लैण्ड' अर्थात् स्वप्नलोक। भगतसिंह ने 15 जनवरी, 1931 को लाहौर केन्द्रीय कारागार की फांसी की कोठरी में बैठकर उसकी भूमिका-लेखन के काम को सम्पन्न किया। इस भूमिका में सरदार ने हिंसा, अहिंसा, ईश्वर धर्म तथा इसी प्रकार के कई एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार व्यक्त किये हैं। मूल भूमिका अंग्रेज़ी में है। यहां उसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। अभी तक अप्रकाशित सरदार भगतसिंह का यह लेख उनके व्यक्तित्व के एक अछूते पक्ष पर अच्छा प्रकाश डालता है। वे अच्छे यौद्धा तथा राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ अच्छे आलोचक भी थे।

"मेरे लायक दोस्त लाला रामसरन दास ने मुझसे अपनी पुस्तक 'ड्रीम लैण्ड' की भूमिका लिखने को कहा है। मैं न तो कवि हूं, न साहित्यकार, न मैं एक पत्रकार हूं और न एक आलोचक। इसलिए मैं उनकी इस मांग का कोई औचित्य नहीं खोज पा रहा हूं। लेकिन मैं जिन परिस्थितियों में हूं वे मुझे लेखक से प्रश्न पर बहस करने और तर्क-वितर्क करने की सुविधा प्रदान नहीं करतीं और इस प्रकार वे मेरे सामने इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं छोड़तीं कि मैं अपने मित्र की इच्छा पूरी करूं।

चूंकि मैं कवि नहीं हूं, इसलिए मैं इस पर उस दृष्टिकोण से बहस करने नहीं जा रहा हूं। मुझे छन्द और तुक का बिलकुल ज्ञान नहीं है और मैं यह भी नहीं जानता कि तुक के मानदण्डों से परखने पर यह सही साबित होगी या नहीं। साहित्यकार न होने के नाते राष्ट्र के साहित्य में उसे उचित स्थान दिलाने के दृष्टिकोण से भी मैं उस पर बहस करने नहीं जा रहा हूं।

एक राजनैतिक कार्यकर्ता होने के नाते मैं अधिक से अधिक इस पर उसी दृष्टिकोण से बात कर सकता हूं। लेकिन यहां भी एक बात मेरे काम को करीब-करीब असंभव बना देती है, क्योंकि मैं पुस्तक के विषय में लेखक से सहमत नहीं हूं। मैं अपने मित्र से सभी मामलों पर एकमत नहीं हूं। वे इस बात को जानते थे कि मैं बहुत-से बुनियादी प्रश्नों पर उनसे मतभेद रखता हूं। इसलिए मैं जो लिखने जा रहा हूं वह किसी भी हालत में पुस्तक की भूमिका नहीं होगी। वह बहुत कुछ उसकी आलोचना हो सकती है और इसलिए उसका स्थान पुस्तक के अन्त में होगा, आरंभ में नहीं।

राजनैतिक क्षेत्र में 'ड्रीम लैण्ड' का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। मौजूदा स्थिति में वह आंदोलन की एक महत्त्वपूर्ण कमी को पूरा कर रहा है। दरअसल आधुनिक इतिहास में किसी प्रकार की महत्त्वपूर्ण भूमिका रखने वाला हर राजनैतिक आन्दोलन आदर्शहीन रहा है। क्रान्तिकारी आन्दोलन भी इसका अपवाद नहीं है। एक गदर पार्टी को छोड़कर, जिसने अमरीकी ढंग की सरकार से प्रेरित होकर स्पष्ट कहा था कि वह भारत की मौजूदा सरकार को हटाकर उसके स्थान पर प्रजातांत्रिक प्रकार की सरकार स्थापित करना चाहती है,

अपनी पूरी कोशिशों के बावजूद मुझे ऐसी एक भी क्रान्तिकारी पार्टी नहीं मिली जिसे इस बात का स्पष्ट ज्ञान हो कि यह किस बात के लिए लड़ रही है। अन्य सभी पार्टियों में जो लोग थें वे मात्र इतना भर जानते थे कि उन्हें विदेशी शासकों से लड़ना है। यह विचार अपने में बहुत सराहनीय है, लेकिन इसे क्रान्तिकारी विचार नहीं कहा जा सकता। हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि क्रान्ति का मतलब मात्र उथल-पुथल या एक खूनी संघर्ष नहीं है। जब हम क्रान्ति की बात करते हैं तो उसमें मौजूदा हालातों (अर्थात् सरकार) को पूरी तरह ध्वंस करने के बाद समाज के व्यवस्थित पुनर्गठन के कार्यक्रम की बात निहित है।

राजनैतिक क्षेत्र में उदारतावादी (लिबरल्स) मौजूदा सरकार के नीचे रहकर ही कुछ सुधार चाहते थे जबकि उग्रवादी लोगों की मांगे कुछ अधिक थीं और वे अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उग्र उपायों से काम लेने के लिए तैयार थे। क्रान्तिकारी हमेशा उग्र उपायों के हक में रहे हैं और उनका एक ही विचार रहा है-विदेशी आधिपत्य को उखाड़ फेंकना। निस्सन्देह इनमें कुछ ऐसे लोग भी थे जो इन उग्र उपायों से कुछ सुधार प्राप्त करना चाहते थे। इन सभी आन्दोलनों को सही अर्थो में क्रान्तिकारी नहीं कहा जा सकता। लेकिन लाला रामसरन दास पहले क्रान्तिकारी हैं जिन्हें पंजाब में एक बंगाली फरार ने 1908 में औपचारिक तौर पर (क्रान्तिकारी पार्टी में) भर्ती किया था। तब से वे लगातार क्रान्तिकारी आन्दोलन के सम्पर्क में रहे और अन्त में वें गदर पार्टी में भर्ती हो गये। लेकिन आन्दोलन के आदर्शो के बारे में उन लोगों के (1908 के क्रान्तिकारियों के) जो पुराने विचार थे उन्होंने उनका परित्याग नहीं किया। पुस्तक की खूबसूरती और उसके मूल्यों को बढाने वाली एक और भी दिलचस्प बात है। लाला रामसरन दास को 1915 में मृत्युदण्ड मिला था। बाद में वह सजा घटाकर आजीवन कारावास कर दी गई थी। आज स्वयं फांसी की कोठरी में बैठकर मैं अपने पाठकों से साधिकार कह सकता हूं कि आजीवन कारावास मौत की बनिस्वत अपेक्षाकृत कहीं अधिक कठोर दण्ड है। लाला रामसरन दास को पूरे चौदह माल जेल में बिताने पड़े थे और उन्होंने यह काव्य दक्षिण की किसी जेल में लिखा था। लेखक की उस समय की मनोदशा और मानसिक संघर्ष की काव्य पर स्पष्ट छाप है और वह इसे और भी सुन्दर तथा दिलचस्प बना देती है। इस काव्य को लिखने का निश्चय करने में पहले वह (लेखक) किन्हीं अवसादपूर्ण मनोभावों के विरुद्ध कठिन संघर्ष करता रहा है। ऐसे समय पर जब बहुत-से साथी आश्वासन (अंडरटेकिंग) देकर छूट गए थे और सबके सामने, उसके सामने भी, बड़े-बड़े प्रोलभन थे, और जब पत्नी तथा बच्चों की मधुर एवं दुःखद स्मृतियां मुक्ति-लाभ की प्रबल आकांक्षा को और अधिक बल दे रही थी, तब उसे इन सब बातों के पस्त करने वाले प्रभाव के खिलाफ कठिन संघर्ष करना पड़ा था और उसने अपना ध्यान इस (काव्य-रचना) की ओर मोड़ दिया था। यही कारण है कि काव्य के प्रारम्भिक पदों में हमें इस प्रकार को आकस्मिक भावोद्वेग मिलता है—

> "wife, children, friends that me surround
> were poisonous snakes all around"
> "पत्नी पुत्र मित्रगण मेरे
> जो मुझको रहते हैं घेरे
> विषधर नाग सदृश थे ये सब

देते रहते चहुंदिशि फेरे।”

वह आरंभ में दर्शन की बात करता है। यह दर्शन बंगाल तथा पंजाब के सभी क्रान्तिकारी आन्दोलनों की रीढ है। मेरा लेखक मे इस प्वाइंट पर बहुत बड़ा मतभेद है। उसकी विश्व की व्यवस्था हेतुवादी एवं पारलौकिक (मेटाफिजिकल) है; जबकि मैं एक भौतिकयादी हूं और गोचर जगत की मेरी व्यख्या कारण-सम्बद्ध होगी। फिर भी यह रचना किसी हालत में असामयिक नहीं है। हमारे देश में जो साधारण विचार प्रचलित हैं। वे लेखक द्वारा व्यक्त किए गए विचारों से अधिक मेल खाते हैं। इस समय की अपनी उदासी की मनोदशा से लड़ने के उदेश्य से उसने प्रार्थना का मार्ग अपनाया है। यह इस बात से स्पष्ट है पुस्तक का सार का सार प्रारम्भिक भाग ईश्वर, उसकी स्तुति और उसकी परिभाषा आदि को अर्पित है। ईश्वर पर विश्वास रहस्यवाद का परिणाम हूँ और रहस्यवाद मानसिक अवसाद की स्वाभाविक उपज है। यह जगत 'माया' है या 'मिथ्या' है, एक स्वप्न या कल्पना हैं—ऐसे विचारों को रहस्यवाद कहते हैं। इन विचारों को पुराने जमाने के शंकराचार्य तथा उन जैसे अन्य दार्शनिकों ने जन्म दिया और विकसित किया था। लेकिन भौतिकवादी दर्शन के अन्तर्गत इस प्रकार की विचारधरा के लिए कोई स्थान नहीं है। फिर भी लेखक का यह रहस्यवाद किसी भी रूप में हीन, ओछा या खेदोत्पादक नहीं है। उसका अपना सौन्दर्य एवं आकर्षण है। उसके विचार उत्साहवर्धक हैं। देखिये—

निगाह से ओझल छिपे हुए बुनियाद के पत्थर बनो,
और अपने सीने पर सहर्ष बर्दाश्त करो
विशाल और भारी इमारत का बोझ,
कष्ट सहन में अनुभव करो सच्ची सरण (संतोष)
करो न ईर्ष्या द्वार पर जड़े पत्थर से
जिस पर उंडेलता है जग सारी प्रशंसा।

अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर मैं साधिकार कह सकता हूं कि गुप्त कार्यो में, जब मनुष्य को लगातार खतरे का जीवन बिताना पड़ता है, आशारहित और निर्भय हमेशा, अजानी, सम्मानरहित, संगीतहीन मृत्यु के लिए तत्पर-तब ऐसे अवसरों पर व्यक्तिगत प्रलोभनों और इच्छाओं से वह इस प्रकार के रहस्यवाद के सहारे ही लड़ सकता है और ऐसा रहस्यवाद किसी प्रकार से भी पस्ती या शिथिलता उत्पन्न करने वाला नहीं होता।

लेखक ने एक क्रान्तिकारी की मनोवृत्ति का वर्णन किया है। लाला रामसरन दास एक ऐसी क्रान्तिकारी पार्टी के सदस्य थे जिसे बहुत हिंसक कार्यो के लिए उत्तरदायी ठहराया गया था, लेकिन इससे यह साबित नहीं होता कि क्रान्तिकारी लोग बरबादी और तबाही में सुख अनुभव करने वाले खून के प्यासे दानव होते हैं। देखिये—

यही आवश्यकता हो तो ऊपर से उग्र एवं भयानक बनी,
लेकिन अपने दिल में हमेशा नम्र रही
फुफकारो यदि आवश्यकता हो, किन्तु काटो मत,
दिल से प्यार करो और ऊपर से लड़ो।

निर्माण के लिए ध्वंस आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। क्रान्तिकारियों को उसे अपने कार्यक्रम के आवश्यक अंग के रूप में अपनाना पड़ता है। ऐसा किया गया है। लेनिन ने एक

बार गोर्की से कहा था कि ऐसा संगीत सुनने को नहीं मिला जो शरीर के तंतुओ में प्राण फूंक दे और यह कि ऐसा संगीत सुनकर उनकी इच्छा कलाकारों के सर थपथपाने की होती है। उन्होंने आगे कहा, 'लेकिन यह समय सर थपथपाने का नहीं है। इस समय तो हाथों का काम सरों को तोड़ने का है, यद्यपि हमारा अन्तिम उद्देश्य हर प्रकार की हिंसा को समाप्त करना है।' जब क्रान्तिकारियों को एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में हिंसात्मक उपायों से काम लेना पड़ता है तो भी वे ठीक ऐसा ही अनुभव करते हैं।

इसके बाद लेखक ने आपस में टकराने वाले विभिन्न धर्मो की समस्या को लिया है। वह सभी धर्मो में तालमेल बिठलाने की कोशिश करता है जैसा कि प्राय: सभी राष्ट्रवादी करते हैं। प्रश्न को सुलझाने का यह तरीका लम्बा और गोलमोल है और जहां तक मेरा सवाल है मैं इसे कार्ल मार्क्स के एक वाक्य में यह कहकर रद्द कर दूंगा कि 'धर्म जनता के लिए अफीम है।'

अन्त में उसकी कविता का सबसे महत्वपूर्ण वह हिस्सा आता है जहां उसने भावी समाज के बारे में लिखा है, जिस समाज की स्थापना के लिए हम सब लालायित हैं। लेकिन मैं आरंभ में ही एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं। 'ड्रीम लैंड ' सचमुच का एक स्वप्नलोक है। लेखक ने बड़े ही निष्कपट भाव से पुस्तक के शीर्षक द्वारा इसे स्वीकार कर लिया है। वह इस विषय पर कोई वैज्ञानिक थीसिस लिखने का दावा नहीं करता। 'ड्रीम लैंड' (स्वप्नलोक) शीर्षक इस बात को बिलकुल स्पष्ट कर देता है। लेकिन स्वप्नलोकों की निश्चित रूप से सामाजिक प्रगति में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। सेन्ट साइमन, फूरिये और राबर्ट ओवेन और उनके सिद्धान्तों के अभाव में मार्क्सवादी वैज्ञानिक समाजवाद भी न होता। जब हमारे कार्यकर्ता अपने आन्दोलन के दर्शन को व्यवस्थित रूप देने और आन्दोलन के बारे में एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण गढ़ने के महत्त्व को समझेंगे, उस समय यह पुस्तक उसके लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी।

मैंने यह बात मार्क की है कि लेखक की अभिव्यक्ति-शैली परिमार्जित नहीं है। अपने स्वप्नलोग का वर्णन करते समय लेखक मौजूदा समाज के विचारों से अछूता नहीं रह पाया है।

'जरूरतमंदों को दान देना'

भविष्य के समाज में, अर्थात कम्युनिस्ट समाज में, जिसका हम निर्माण करना चाहते हैं, हम धर्मार्थ संस्थायें स्थापित करने नहीं जा रहे हैं, बल्कि उस समाज में न गरीब होंगे न जरूरतमन्द, न दान देने वाले, न दान लेने वाले। इस असंगति के बावजूद लेखक ने प्रश्न को बड़ी खूबसूरती के साथ पेश किया है।

पुस्तक में लेखक ने समाज की जिस साधारण रूपरेखा पर बहस की है वह बहुत कुछ वैसी ही है जैसी वैज्ञानिक समाजवाद की। लेकिन उसमें ऐसी बातें भी हैं जिसका विरोध या प्रतिवाद आवश्यक है, या यूं कहा जाये कि उनमें सुधार आवश्यक है। मिसाल के तौर पर 427 वें पद के नीचे दी हुई टिप्पणी में वह लिखता है कि राज कर्मचारियों को अपनी रोजी कमाने के लिए प्रतिदिन चार घंटे खेतों पर या कारखानों में काम करना चाहिए। लेकिन यह अव्यावहारिक तथा हवाई बात है। यह बात शायद आज की व्यवस्था में राज

कर्मचारियों को जो ऊंचा वेतन दिया जाता है. उसके खिलाफ प्रतिक्रिया की ही उपज है। दरअसल बोल्शेविको को भी यह स्वीकार करना पड़ा था कि दिमागी काम उतना ही उत्पादक श्रम है जितना कि शारीरिक श्रम, और आने वाले समाज में जब विभिन्न तत्त्वों के आपसी सम्बन्धों का समायोजन समानता के आधार पर होगा तो उत्पादक और वितरक दोनों समान रूप से महत्वपूर्ण माने जायेंगे। आप एक नाविक से यह उम्मीद नहीं कर सकते कि वह चौबीस घंटे बाद अपना जहाज़ रोककर रोजी कमाने के लिए चार घंटे काम करने चला जायेगा, या एक वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला और अपना प्रयोग (काम) छोड़कर खेत पर अपने काम का कोटा पूरा करने चला जायेगा। यह दोनों ही बहुत उत्पादक काम कर रहे हैं। समाजवादी समाज में इतने ही अन्तर की आशा की जाती है कि दिमागी काम करने वाला शारीरिक काम करने वाले से ऊंचा नहीं माना जायेगा।

निःशुल्क शिक्षा के बारे में लाला रामसरन दास का विचार सचमुच ध्यान देने योग्य है और रूस में वहां की समाजवादी सरकार ने बहुत कुछ उसी प्रकार को पद्धति अपनाई है।

अपराध के बारे में सचमुच उनकी बहस बहुत आगे बड़ी हुई विचारधारा है। अपराध (जुर्म) एक बहुत गंभीर सामाजिक समस्या है जो बहुत सतर्क इलाज चाहती है। लेखक ने अपने जीवन का अच्छा भाग जेल में बिताया है। उसे अमली तजुर्बा है। एक स्थान पर उसने उठ जेल शब्दावली का प्रयोग किया है। जैसे हल्की मशक्कत, दर्मियानी-मशक्कत और सख्त-मशक्कत आदि। सभी अन्य समाजवादियों की भांति उमका सुझाव हैं दण्ड का आधार प्रतिशोध के बजाय सुझाव का सिद्धान्त होना चाहिए न्याय प्रवधान को परिचालित करने वाला सिद्धान्त दण्ड देना न होकर सुपथ पर लाना होना चाहिरा। और जेलों का रूप वास्तविक नर्क होने के बजाय सुधारालयों का हो। इम सम्बन्ध में पाठकों को चाहिए कि रूसी कारागार व्यवस्था का अध्ययन करें :

सेनाओ पर बात करते समय उसने युद्धों के बारे में भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। मेरा मत है कि उस समय (भविष्य में, अनु.) के विश्वकोष में युद्ध के बारे में बहुत कम सफे रहेंगे और युद्ध सामग्री अजायबघरों की शोभा बढ़ायेगी, क्योंकि उस समाज में युद्धों को जन्म देने वाले परस्पर विरोधी हित नहीं रह जायेंगे।

अधिक-से-अधिक हम यह कह सकते हैं कि युद्ध संक्रमण काल तक रहेंगे। यदि हम रूस का उदाहरण लें तो हम इस बात को अच्छी तरह समझ सकेंगे। यहां इस समय सर्वहारा वर्ग का अधिनायक तंत्र है। वे लोग समाजवादी समाज की स्थापना करना चाहते हैं। तब तक के लिए पूंजीवादी समाज से अपनी रक्षा करने के लिए उन्हें एक सेना रखनी पड़ रही है। लेकिन उसके युद्ध-उद्देश्य भिन्न होंगे। क्रान्तिकारी सेनाएं दूसरे देशों में जायेंगी—वहां की जनता पर शासन करने या उसे लूटने के लिए नहीं, बल्कि शोषक शासकों को उनके सिंहासनों से नीचे गिराने के लिए, उनके खून चूसने वाले शोषण का अन्त करने के लिए और वहां की मेहनतकश जनता को मुक्ति दिलाने के लिए। लेकिन वहां हमारे जवानों को लड़ने के लिए उकसाने के लिए पुरानी राष्ट्रीय या जातीय प्रथा नहीं होगी।

आज के सभी मुक्त विचारकों कां सबसे अधिक जनप्रिय और फौरी उद्देश्य है विश्व संघ, और लेखक ने उस विषय पर अच्छा लिखा है और तथाकथित 'लीग. आफ नेशन्स' की आलोचना बड़ी सुन्दर है।

571 वें (572) पद के नीचे दिये एक फुटनोट में लेखक ने संक्षेप में उपायों के प्रश्न को लिया है। यह कहता है, इस प्रकार के राज्य शारीरिक हिंमात्मक क्रान्तियों द्वारा नहीं स्थापित किये जा सकते। वह समाज पर बाहर से थोपा नहीं जा सकता। उसे तो अन्दर से ही विकसित होना पड़ेगा...। इसकी प्राप्ति धीरे-धीरे क्रम-विकास की प्रक्रिया द्वारा और जनता को ऊपर बतलाई लाइन पर प्रशिक्षित करके हो सकती है, आदि। इस बयान में अपने में कोई ‘असंगति नहीं है यह बिलकुल सही है। लेकिन पूरी तरह से उसकी व्याख्या न की जाने के कारण वह कुछ गलतफहमियां या उलझाव पैदा कर सकता है। क्या इसका यह मतलब है कि लाला रामसरन दाम को बल-प्रयोग की निरर्थकता का ज्ञान हो गया है? क्या वे अहिंसा के कट्टर समर्थक हो गये हैं? इसका यह मतलब नहीं निकलता?

उपरोक्त बयान का क्या मतलब है? आइये, उस पर थोड़ी रोशनी डालते चलें। अन्य किसी व्यक्ति की अपेक्षा क्रान्तिकारी इस बात को ज्यादा अच्छी तरह समझते हैं कि समाजवादी समाज की स्थापना हिंसात्मक उपायों से नहीं हो सकती, बल्कि उसे अन्दर में ही प्रस्फुटित और विकसित होना चाहिए। लेखक का सुझाव है कि उपाय के रूप में केवल प्रशिक्षण से ही काम लेना चाहिए। लेकिन हर व्यक्ति इस बात को अच्छी तरह समझ सकता है कि यहां की मौजूदा सरकार दरअसल सभी पूंजीवादी सरकारे, इस प्रकार के प्रयासों की न सिर्फ सहायता नहीं करेंगी बल्कि इसके विपरीत निर्दयतापूर्वक उसका दमन करेंगी। तब उसके क्रमविकास से क्या हाथ लगेगा? हम क्रान्तिकारी लोग सत्ता हथियाने और एक क्रान्तिकारी सरकार संगठित करने का प्रयास कर रहे हैं। उस सरकार को जनता को प्रशिक्षित करने के लिए अपने सभी साधनों को काम में लाना होगा, जैसा कि इस समय रूस में हो रहा है। पूंजीपतियों के हाथों मे सत्ता छीनने के बाद रचनात्मक कार्य के लिए शान्तिपूर्ण उपाय काम में लाये जायेंगे और बाधाओं को कुचलने में शक्ति का प्रयोग किया जायेगा। यदि लेखक का यही अभिप्राय है तो हम उसके साथ हैं और मुझे विश्वास है कि उसका यही मतलब है। पुस्तक पर मैंने काफी विस्तार से लिखा है। दरअसल मैंने उसकी आलोचना लिख डाली है। लेकिन मैं पुस्तक में किसी प्रकार का परिवर्तन करने के लिए कहने नहीं जा रहा हूं क्योंकि उसका एक ऐतिहासिक मूल्य है। 1914-15 के क्रान्तिकारियों के यही विचार थे।

मैं अपने नौजवानों के लिए खास तौर पर इस पुस्तक की सिफारिश करता हु, लेकिन एक चेतावनी के साथ। कृपया आंख मूंदकर इस पर अमल करने के लिए या इसमें जो कुछ लिखा है उसे वैसा ही मान लेने के लिए इसे न पढ़ें। इसे पढ़ें, इसकी आलोचना करें, इस पर सोचें और इसकी सहायता से स्वयं अपनी समझदारी बनायें।

भगतसिंह
15-1-31

✡✡

# कौम के नाम सन्देश

कांग्रेस और अंग्रेज़ी की सरकार में समझौते की बात चल रही थी और भगतसिंह को फांसी का हुक्म हो चुका था। भगतसिँह ने अपनी काल-कोठर से देश के युवकों के नाम (2 फरवरी, 1931) को यह सन्देश भेजा और इम प्रकार वर्तमान और भावी परिस्थितियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया।

# आजादी की लड़ाई और उसके बाद

प्यारे साथियो,

इस समय हमारा आन्दोलन अत्यन्त महत्वपूर्ण परिस्थितियों में से गुजर रहा है। एक साल के कठोर संग्राम के बाद गोलमेज़ कान्फ्रेंस ने हमारे सामने शासन-विधान में परिवर्तन के सम्बन्ध में कुछ निश्चित बातें पेश की हैं और कांग्रेस के नेताओं को निमंत्रण दिया है कि वे आकर शासन-विधान तैयार करने के कामों में मदद दें। काग्रेस के नेता इस हालत में आन्दोलन को स्थगित कर देने के लिए उद्यत दिखाई देते हैं। वे लोग आन्दोलन स्थगित करने के हक में फैसला करेंगे या खिलाफ, यह बात हमारे लिए बहुत महत्त्व नहीं रखती। यह बात निश्चित है कि वर्तमान आन्दोलन का अन्त किसी न किसी प्रकार के समझौते के रूप में होना लाजिमी है। यह दूसरी बात है कि समझौता जल्दी हो जाए या देरी में हो।

वस्तुत: समझौता कोई ऐसी हेय और निंदा-योग्य वस्तु नहीं, जैसाकि साधारणत: हम लोग समझते हैं, बल्कि समझौता राजनैतिक संग्रामों का एक अत्यावश्यक अंग है। कोई भी कौम, जो किसी अत्याचारी शासन के विरुद्ध खड़ी होती है, यह ज़रूरी है कि वह प्रारम्भ में असफल हो और अपनी लम्बी जद्दोजहद के मध्यकाल में इस प्रकार के समझौतों के जरिये कुछ राजनैतिक सुधार हासिल करती जाए परन्तु वह अपनी लड़ाई की आखिरी मंजिल तक पहुंचते-पहुंचते अपनी ताकतों को इतना संगठित और दृढ़ कर लेती है और उसका दुश्मन पर आखिरी हमला ऐसा ज़ोरदार होता है कि शासक लोगों की ताकतें उस वक्त तक भी यह चाहती हैं कि उसे दुश्मन के साथ कोई समझौता कर लेना पड़े। यह बात इस उदाहरण से भली-भांति स्पष्ट की जा सकती है।

1905 में रूस में क्रान्ति की लहर उठी। क्रान्तिकारी नेताओं को बड़ी भारी आशाए थीं। लेनिन उसी समय विदेश से लौटकर आया था, जहां वह पहले भाग कर चला गया था। वह सारे आन्दोलन को चला रहा था। लोगों ने कोई दर्जन-भर भूमिपतियों को मार डाला और कुछ मकानों को जला डाला, परन्तु वह क्रान्ति सफल न हुई। इसका इतना परिणाम अवश्य हुआ कि सरकार कुछ सुधार करने के लिए बाधित हुई और ‘दूमा’ (एक प्रकार की

पार्लियामेंट) की स्थापना की गयी। उस समय लेनिन ने 'दूमा' में जाने का समर्थन किया, परन्तु 1906 में उसी का उसने विरोध शुरू कर दिया और 1907 में उसने दूसरी 'दूमा' में जाने का समर्थन किया, जिसके अधिकार बहुत कम कर दिये गये थे। इसका कारण यह था कि वह 'दूमा' को अपने आन्दोलन का एक मंच (प्लेटफार्म) बनाना चाहता था।

इसी प्रकार 1917 के बाद जब जर्मनी के साथ रूस की संधि का प्रश्न चला, तो लेनिन के सिवा बाकी सभी लोग उस संधि के खिलाफ थे, परन्तु लेनिन ने कहा, 'शान्ति-शान्ति और फिर शान्ति—किसी भी कीमत पर हो शान्ति। यहां तक कि यदि हमें रूस के कुछ प्रान्त भी जर्मनी के 'वार लार्ड' को सौंप देने पड़े, तो भी शान्ति प्राप्त कर लेनी चाहिए।' जब कुछ बोल्शेविक नेताओं ने भी उसकी इस नीति का विरोध किया, तो उसने साफ कहा कि इस समय बोल्शेविक सरकार को मजबूत करना है।'

जिस बात को मैं बताना चाहता हूं वह यह है कि समझौता भी एक ऐसा हथियार है, जिसे राजनैतिक जद्दोजहद के बीच में पग-पग पर इस्तेमाल करना आवश्यक हो जाता है, जिससे एक कठिन लड़ाई से थकी हुई कौम को थोड़ी देर के लिए आराम मिल सके और वह आगे के युद्ध के लिए अधिक ताकत के साथ तैयार हो सके। परन्तु इन सारे समझौतों के बावजूद जिस चीज को हमें भूलना न चाहिए, वह हमारा आदर्श है, जो हमेशा हमारे सामने रहना चाहिए। जिस लक्ष्य के लिए हम लड़ रहे हैं, उसके सम्बन्ध में हमारे विचार बिलकुल स्पष्ट और दृढ़ होने चाहिए। यदि आप सोलह आने के लिए लड़ रहे हैं और एक आना मिल जाता है, तो वह एक आना जेब में डालकर बाकी पन्द्रह आने के लिए फिर जंग छेड़ दीजिए। हिन्दुस्तान के मॉडरेटों की जिस बात से हमें नफरत है, वह यही है उनका आदर्श कुछ नहीं है। वे एक आने के ही लड़ते है और उन्हें मिलता कुछ भी नहीं।

भारत को वर्तमान लड़ाई ज्यादातर मध्य श्रेणी के लोगों के बलबूते पर लड़ी जा रही है, जिनक लक्ष्य बहुत सीमित है। कांग्रेस दुकानदारों और पूंजीपतियों के जरिए इंग्लैंड पर आर्थिक दबाव डालकर कुछ अधिकार ले लेना चाहती है, परन्तु जहां तक देश की करोड़ों मज़दूर और किसान जनता का ताल्लुक है, उनका उद्धार इतने से नहीं हो सकता। यदि देश की लड़ाई लड़नी हो तो मजदूरों, किसानों और सामान्य जनता को आगे लाना होगा, उन्हें लड़ाई के लिए संगठित करना होगा। नेता उन्हें आगे लाने कुछ नहीं करते, न कर ही सकते हैं। इन किसानों को विदेशी-हुकूमत के जुए के साथ-साथ भूमिपतियों और पूंजीपतियों के जुए से भी उद्धार पाना है, परन्तु कांग्रेस का उदेश्य यह नहीं है।

इसलिए मैं कहता हूं कि कांग्रेस के लोग सम्पूर्ण क्रान्ति नहीं चाहते। सरकार पर आर्थिक दबाव डालकर वे कुछ सुधार और लेना चाहते हैं। भारत को धनी श्रेणी के लिए कुछ रियायतें और चाहते हैं और इसलिए मैं यह भी कहता हूं कि कांग्रेस का आन्दोलन किसी न किसी समझौते या असफलता में खत्म हो जायेगा।

इस हालत में नौजवानों को समझ लेना चाहिए कि उनके लिए वक्त और भी सख्त आ रहा है। उन्हें सावधान हो जाना चाहिए कि कहीं उनकी बुद्धि चकरा न जाये या वे हताश न हो बैठें। महात्मा गांधी की दो लड़ाइयों का अनुभव प्राप्त कर लेने के बाद वर्तमान परिस्थितियों और अपने भविष्य के प्रोग्राम के संबंध में साफ-साफ नीति निर्धारित करना हमारे लिए अब ज्यादा जरूरी हो गया है।

इतना विचार कर चुकने के बाद मैं अपनी बात अत्यन्त सादे शब्दों में कहना चाहता हूं। आप लोग 'क्रान्ति चिरंजीवी हो '। (long live revolution) की पुकार करते हैं। यह नारा हमारे लिए बहुत पवित्र है और इसका इस्तेमाल हमें बहुत ही सोच-समझकर करना चाहिए।

जब आप नारे लगाते हैं, तो मैं समझता हूं कि आप लोग वस्तुत: जो पुकारते हैं वही करना भी चाहते हैं। असेम्बली बम केस के समय हमने क्रान्ति शब्द की यह व्याख्या की थी —'क्रान्ति का हमारा अभिप्राय समाज की वर्तमान प्रणाली और वर्तमान संगठन को पूरी तरह उखाड़ फेंकना है।' इस उद्देश्य के लिए हम पहले सरकार की ताकत को अपने हाथ में लेना चाहते हैं। इस समय शासन की मशीन धनियों के हाथ में है। सामान्य जनता के हितों की रक्षा के लिए तथा अपने आदर्शो को क्रियात्मक रूप देने के लिए—अर्थात् समाज का नये सिरे से संगठन कार्ल मार्क्स के सिद्धांतों के अनुसार करने के लिए—हम सरकार की मशीन को अपने हाथ में लेना चाहते हैं। हम इसी उद्देश्य के लिए लड़ रहे हैं, परन्तु इसके लिए हमें साधारण जनता को शिक्षित करना चाहिए।

जिन लोगों के सामने इस महान् क्रान्ति का लक्ष्य है, उनके लिए नये शासन- सुधारों की कसौटी क्या होनी चाहिए? हमारे लिए निम्नलिखित तीन बातों पर ध्यान रखना किसी भी शासन-विधान की परख के लिए जरूरी है—

1. शासन की जिम्मेवारी कहां तक भारतवासियों को सौंपी जाती है?
2. शासन-विधान को चलाने के लिए किस प्रकार की सरकार बनाई जाती है और उसमें हिस्सा लेने का आज जनता को कहां तक मौका मिलता है?
3. भविष्य में उससे क्या आशाएं की जा सकती हैं? उस पर कहां तक प्रतिबंध लगाये जाते हैं? सर्वसाधारण को वोट देने का हक दिया जाता है या नहीं?

भारत की पार्लियामेंट का क्या स्वरूप हो, यह प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। भारत सरकार की कौंसिल आफ स्टेट सिर्फ धनियों का जमघट है और लोगों को फांसने का एक पिंजरा है, इसलिए उसे हटाकर एक ही सभा, जिसमें जनता के प्रतिनिधि ही, रखनी चाहिए।

प्रान्तीय स्वराज्य का जो निश्चय गोलमेज कान्फ्रेंस में हुआ है उसके संबंध में मेरी राय है कि जिस प्रकार के लोगों को वहां सारी ताकतें दी जा रही हैं, उससे तो यह 'प्रान्तीय स्वराज्य' न होकर 'प्रान्तीय जुल्म' हो जाएगा।

इन सब अवस्थाओं पर विचार करके हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि सबसे पहले हमें सारी अवस्थाओं का चित्र साफ तौर पर अपने सामने अंकित कर लेना चाहिए। यद्यपि हम यह मानते हैं कि समझौते का अर्थ कभी भी आत्म-समर्पण या पराजय स्वीकार करना नहीं, किन्तु एक कदम आगे और फिर कुछ आराम है, परन्तु साथ ही हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि समझौता इससे अधिक भी और कुछ नहीं। वह अंतिम लक्ष्य और हमारे लिए अन्तिम विश्राम का स्थान नहीं।

हमारे दल का लक्ष्य क्या है और उसके साधन क्या हैं, यह भी विचारणीय है। दल का नाम 'सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी' है और इसलिए इसका ल्क्ष्य एक सोशलिस्ट सामाजिक संगठन की स्थापना है। कांग्रेस और इस दल के लक्ष्य में यही भेद है राजनैतिक क्रान्ति से शासन-शक्ति अंग्रेज़ो के हाथ से निकलकर हिन्दुस्तानियों के हाथों में आ जायेगी। हमारा

लक्ष्य शासन-शक्ति को उन हाथों के सुपुर्द करना है, जिनका लक्ष्य समाजवाद हो। इसके लिए मज़दूरों और किसानों को संगठित करना आवश्यक होगा, क्योंकि उन लोगों के लिए लार्ड रीडिंग या इरविन को जगह तेजबहादुर या पुरुषोत्तम दास, ठाकुर दास के आ जाने से कोई भारी फर्क न पड़ सकेगा।

पूर्ण स्वाधीनता से भी इस दल का यही अभिप्राय है। जब लाहौर कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया, तो हम लोग पूरे दिल से इसे चाहते थे, परन्तु कांग्रेस के इसी अधिवेशन में महात्मा जी ने कहा कि 'समझौते का दरवाजा अभी भी खुला है।' इसका अर्थ यह था कि वह पहले ही जानते थे कि उनकी लड़ाई का अन्त इसी प्रकार के किसी समझौते में होगा और वे पुरे दिल से स्वाधीनता की घोषणा न कर रहे थे। हम लोग इसी बेदली से घृणा करते हैं।

इस उद्देश्य के लिए नवजावनों को कार्यकतां बनकर मैदान में निकलना चाहिए नेता बनने वाले तो पहले ही बहुत हैं। हमारे दल को नेताओं की आवश्यकता नहीं है। अमर आप दुनियादार हैं, बाल-बच्चों और गृहस्थी में फंसे हैं, तो हमारे मार्ग पर मत आइये। आप हमारे उद्देश्य में सहानुभूति रखते हैं, तो और तरीकों से हमें सहायता दीजिए। सख्त नियंत्रण में रह सकने वाले कार्यकर्त्ता ही इस आन्दोलन को आगे ले जा सकते हैं। ज़रूरी नहीं कि दल इस उद्देश्य के लिए छिपकर ही काम करे। हमें युवकों के लिए स्वाध्याय-मंडल (स्टडी सर्किल) खोलने चाहिए। पैम्फ्लेटों ओर लीफलेटों, छोटी पुस्तकों, छोटे- छोटे पुस्तकालयों और लेक्चरों, बातचीत आदि से हमें अपने विचारों का सवत्र्र प्रचार करना चाहिए।

हमारे दल का एक सैनिक विभाग भी संगठित होना चाहिए। कभी-कभी उसकी बड़ी जरूरत पड़ जाती है। इस संबंध में मैं अपनी स्थिति बिलकुल साफ कर देना चाहता हूं। मैं जो कुछ कहना चाहता हूं, उसमें गलतफहमी की संभावना है, परन्तु आप लोग मेरे शब्दों और वाक्यों का कोई गूढ़ अभिप्राय न गढ़े।

यह बात प्रसिद्ध ही है कि मैं आतंकवादी (टेररिस्ट) रहा हूं, परन्तु मैं आतंककारी नहीं हूं। मैं एक क्रान्तिकारी हूं, जिसके कुछ निश्चित विचार और निश्चित आदर्श हैं ओर जिसके सामने एक लम्बा प्रोग्राम है। मुझे यह दोष दिया जायेगा, जैसा कि लोग रामप्रसाद बिस्मिल को भी देते थे कि फांसी की कालकोठरी में पड़े रहने से मेरे विचारों में भी कोई परिवर्तन आ गया है, परन्तु ऐसी बात नहीं। मेरे विचार अब भी वही हैं। मेरे हृदय में अब भी उतना ही और वैसा ही उत्साह है और वही लक्ष्य है, जो जेल से बाहर था। पर मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि हम बम से कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकते। यह बात हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी के इतिहास से आसानी से मालूम हो जाती है। केवल बम फेंकना न सिर्फ व्यर्थ है, परन्तु बहुत बार हानिकारक भी है। उनकी आवश्यकता किन्हीं खास अवस्थाओं में ही पड़ा करती है। हमारा मुख्य लक्ष्य मज़दूरों और किसानों का संगठन होना चाहिए। सैनिक विभाग युद्ध-सामग्री को किसी खास मौके के लिए केवल संग्रह करता रहे।

यदि हमारे नौजवान इसी प्रकार प्रयत्न करते जायेंगे, तब जाकर एक साल में स्वराज्य तो नहीं, किन्तु भारी कुर्बानी और त्याग को कठिन परीक्षा में से गुजरने के बाद वे अवश्य विजयी होंगे। क्रान्ति चिरंजीवी हो।

✡✡

3 मार्च, 1931 को परिवार वालों के साथ भगतसिंह की आखिरी मुलाकात हुई। मुलाकात के बाद उसी दिन उन्होंने अनुज कुलवीरसिंह को यह अंतिम पत्र लिखा।

लाहौर सेन्ट्रल जेल
3 मार्च 1931

अज़ीज़म कुलबीर सिंह,

तुमने मेरे लिए बहुत कुछ किया। मुलाकात के वक्त खत के जवाब में कुछ लिख देने के लिए कहा। कुछ अलफाज (शब्द) लिख दूं और बस—देखो मैंने किसी के लिए कुछ नहीं किया, तुम्हारे लिए भी कुछ नहीं। आजकल बिलकुल मुमीबत में छोड़कर जा रहा हूं। तुम्हारी जिन्दगी में क्या होगा? गुजारा कैसे करोगे? यही सब सोचकर कांप जाता हूं, मगर भाई, हौसला रखना, मुसीबत में भी कभी मत घबराना। इसके सिवा और क्या कह सकता हूं। अमेरिका जा सकते तो बहुत अच्छा होता, मगर अब तो यह भी नामुमकिन मालूम होता है। आहिस्ता-आहिस्ता मेहनत से पढ़ते जाना। अगर कोई काम सीख सको तो बेहतर होगा, मगर सब कुछ पिताजी के मशवरे से करना। जहां तक हो सके, मुहब्बत से सब लोग गुज़ारा करना। इसके सिवाय क्या कहूं?

जानता हूं, आज तुम्हारे दिल के अन्दर गम का समुद्र ठाठें मार रहा है। भाई, तुम्हारी बात सोचकर मेरी आखों में आंसू आ रहे हैं, मगर क्या किया जाए, हौसला करना। मेरे अज़ीज़, मेरे बहुत-बहुत प्यारे भाई, जिन्दगी बड़ी सख्त है और दुनिया बड़ी बे-मुरब्बत। सब लोग बड़े बेरहम हैं। सिर्फ मुहब्बत और हौसले से ही गुज़ारा हो सकेगा। कुलतार की तालीम की फिक्र भी तुम ही करना। बड़ी शर्म आती है, और अफसोस के सिवाय मैं कर ही क्या सकता हूं! साथ वाला खत हिन्दी में लिखा हुआ है। खत 'के' की बहन को दे देना। अच्छा नमस्कार। अज़ीज़ भाई अलविदा... रुखसत।

तुम्हारा खैर—अन्देश
भगतसिंह

✡✡

उसी दिन अपने दूसरे अनुज कुलतारसिंह को अपना यह अन्तिम पत्र लिखा।

सेन्ट्रल जेल, लाहौर
3 मार्च 1931

अज़ीज़ कुलतार,

आज तुम्हारी आंखों में आंसू देखकर बहुत दुःख हुआ। आज तुम्हारी बातों में बहुत दर्द था, तुम्हारे आंसू मुझसे सहन नहीं होते।

बरखुर्दार, हिम्मत से शिक्षा प्राप्त करना और सेहत का खयाल रखना। हौसला रखना और क्या कहूं!—

उसे यह फिक्र है हरदम नया तर्ज़े जफ़ा क्या है,
हमें यह शौक है देखें सितम की इन्तहा क्या है,
दहर से क्यों खफ़ा रहें चर्ख़ का क्यों गिला करें,
सारा जहां अदू सही, आओ मुकाबला करें।
कोई दम का मेहमां हूं, ऐ अहले महफ़िल,
चरागे सहर हूं, बुझा चाहता हूं।
मेरी हवा में रहेगी खयाल की बिजली,
यह मुश्ते-खाक है फ़ानी, रहे रहे न रहे।

अच्छा रुखसत। 'खुश रहो अहले-वतन हम तो सफर करते हैं।'
हौसले से रहना। नमस्ते!

तुम्हारा भाई
भगतसिंह

✪✪

भगतसिंह और उनके दोनों साथियों को फांसी लगने ही वाली है, यह सबकी राय थी। उसे किसी तरह कुछ दिन के लिए रोकना चाहिए जिससे व्यापक रूप में उन्हें फांसी में बचाने का प्रयत्न हो सके। यह 'लाहौर षड्यंत्र-केस-डिफेंस कमेटी' के कानून-विशारदों को राय थी। इसका एक ही उपाय था कि भगतसिंह और उनके साथी गवर्नर से दया की प्रार्थना करें, पर भगतसिंह कभी भी इसके लिए तैयार नहीं हो सकते, इस सब जानते थे।

श्रो प्राणनाथ मेहता एडवोकेट की बात भगतसिंह मानते थे। वे 19 मार्च, 1931 को जेल में भगतसिंह और उनके दोनों साथियों से मिले। घुमा-फिराकर उन्होंने उनसे 'मर्सी-पिटीशन' (दया-प्रार्थना) की बात कही और विश्वास दिलाया कि यदि आप लोग 'हां' कह दें, तो हम पिटीशन की भाषा ऐसी कर देंगे कि उससे आपका ज़रा भी सम्मान कम न हो। दूसरे दोनों साथी तो इससे नाराज हुए, पर भगतसिंह ने इसे मान लिया और कहा—अच्छी बात है, तुम तैयार कर लाओ मर्सी-पिटीशन।

श्री प्राणनाथ खुशी-खुशी लौटे और कई कानून-विशारदों के साथ रात भर मर्सी-पिटीशन का ड्राफ्ट बनाते रहे। दूसरे दिन 20 मार्च 1931 को जब वे जेल गये तो भगतसिंह ने कहा—हमने तो भेज भी दिया गवर्नर पंजाब को अपना मर्सी-पिटीशन, और उन्होंने निम्नलिखित पत्र उनके हाथ पर रख।

# 'फांसी नहीं, हमें गोली से उड़ाया जाए'

आदरणीय महोदय,

सेवा में सविनय निवेदन है कि भारत की ब्रिटिश-सरकार के सर्वोच्च अधिकारी वायसराय ने एक विशेष अध्यादेश जारी करके लाहौर षड्यंत्र अभियोग की सुनवाई के लिए एक विशेष न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) को स्थापित किया था, जिसने अक्टूबर सन् 1930 में हमें फांसी का दंड सुनाया। हमारे विरुद्ध सबसे बड़ा दोष यह लगाया गया है कि हमने सम्राट जार्ज पंचम के बिरुद्ध युद्ध किया है। न्यायालय के इस निर्णय से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं—प्रथम यह कि अंग्रेज़ जाति और भारतीय जनता के मध्य एक युद्ध चल रहा है, दूसरे यह कि हमने निश्चित रूप से उस युद्ध में भाग लिया है। अत: हम राजकीय युद्धबन्दी हैं। यद्यपि इसकी व्याख्या में बहुत सीमा तक अतिशयोक्ति से काम लिया गया है, तथापि हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि ऐसा करके हमें सम्मानित किया गया है।

प्रथम व्याख्या पर हम ज़रा विस्तार के साथ प्रकाश डालना चाहते हैं। हमारे विचार से प्रत्यक्ष रूप में ऐसी कोई लड़ाई छिड़ी हुई नहीं है और हम नहीं जानते कि युद्ध छिड़ने से न्यायालय का आशय क्या है, परन्तु हम इस व्याख्या को स्वीकार करते हैं। इसके साथ ही हम इसको इसके ठीक अर्थो में समझना चाहते हैं।

हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह युद्ध तब तक चलता रहेगा,

जब तक कि शक्तिशाली व्यक्ति भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार जमाये रखेंगे। चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज़ पूंजीपति, अंग्रेज़ शासक या सर्वथा भारतीय ही हों। उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। यदि शुद्ध भारतीय पूंजीपतियों के द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो तब भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि आपकी सरकार कुछ नेताओं या भारतीय समाज के मुखियाओं पर प्रभाव जमाने में सफल हो जाये, कुछ सुविधायें मिल जाएं अथवा समझौते हो जायें, उससे भी स्थिति नहीं बदल सकती। जनता पर इन सब बातों का प्रभाव बहुत कम पड़ता है।

इस बात की भी हमें चिन्ता नहीं है कि एक बार फिर युवकों को धोखा दिया गया है और इस बात का भी भय नहीं है कि हमारे राजनैतिक नेता पथभ्रष्ट हो गये हैं और वे समझौते की बातचीत में इन निरपराध, बेघर और निराश्रित बलिदानियों को भूल गये हैं, जिन्हें दुर्भाग्य से क्रान्तिकारी पार्टी का सदस्य समझा जाता है। हमारे राजनैतिक नेता उन्हें अपना शत्रु समझते हैं, क्योंकि उनके विचार में वे हिंसा में विश्वास रखते हैं। हमारी वीरांगनाओं ने अपना सब कुछ बलिदान कर दिया है। उन्होंने बलिवेदी पर अपने पतियों को भेंट किया, उन्होंने अपने-आपको भी न्योछावर कर दिया, परन्तु आपकी सरकार उन्हें विद्रोही समझती है। आपके एजेंट भले ही झूठी कहानियां बनाकर उन्हें बदनाम कर दें और पार्टी की ख्याति को हानि पहुंचाने का प्रयास करें, परन्तु यह युद्ध चलता रहेगा।

हो सकता है कि यह युद्ध भिन्न-भिन्न दशाओं में भिन्न-भिन्न स्वरूप ग्रहण करे। कभी यह युद्ध प्रकट रूप ले ले, कभी गुप्त दशा में चलता रहे, कभी भयानक रूप धारण कर ले, कभी किसान के स्तर पर जारी रहे और कभी यह युद्ध इतना भयानक हो जाए की जीवन और मरण की बाजी लग जाये। चाहे कोई भी परिस्थिति हो, इसक प्रभाव आप पर पड़ेगा।

यह आपकी इच्छा है कि आप जिस परिस्थिति को चाहें चुन लें. परन्तु यह युद्ध चलता रहेगा। इसमें छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं दिया जाएगा। बहुत संभव है कि यह युद्ध भयंकर स्वरूप धारण कर ले। यह उस समय तक समाप्त नहीं होगा, जब तक कि समाज का वर्तमान ढांचा समाप्त नहीं हो जाता। प्रत्येक व्यवस्था में परिवर्तन या क्रान्ति नहीं हो जाती और सृष्टि में एक नवीन युग का सूत्रपात नहीं हो जाता।

निकट भविष्य में यह युद्ध अंतिम रूप में लड़ा जाएगा और तब यह निर्णायक युद्ध होगा। साम्राज्यवाद एवं पूंजीवाद कुछ समय के मेहमान हैं। यही यह युद्ध है, जिसमें हमने प्रत्यक्ष रूप में भाग लिया है। हम इसके लिए अपने पर गर्व करते हैं कि इस युद्ध को न तो हमने प्रारम्भ ही किया है और न यह हमारे जीवन के साथ समाप्त ही होगा। हमारी सेवाएं इतिहास के उस अध्याय के लिए मानी जाएंगी, जिसे यतीन्द्रनाथ दास और भगवतीचरण के बलिदानों ने विशेष रूप में प्रकाशमान कर दिया है। इनके बलिदान महान् हैं।

जहां तक हमारे भाग्य का सम्बन्ध है, हम बलपूर्वक आपसे यह कहना चाहते हैं कि आपने हमें फांसी पर लटकाने का निर्णय कर लिया है, आप ऐसा करेंगे ही। आपके हाथों में शक्ति है और आपको अधिकार भी प्राप्त है, परन्तु इस प्रकार आप जिसकी लाठी उसी की भैंस वाला सिद्धांत ही अपना रहे हैं और उस पर कटिबद्ध हैं। हमारे अभियोग की सुनवाई इस वक्तव्य को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि हमने कभी कोई प्रार्थना नहीं की, और अब भी हम आपसे किसी प्रकार की दया की प्रार्थना नहीं करते। हम आपसे केवल यह प्रार्थना

करना चाहते हैं कि आपकी सरकार के ही एक न्यायालय के निर्णय के अनुसार हमारे विरुद्ध युद्ध जारी रखने का अभियोग है।

इस स्थिति में हम युद्धबन्दी हैं और इसी आधार पर हम आपसे मांग करते हैं कि हमारे प्रति युद्धबन्दियों जैसा ही व्यवहार किया जाए—हमें फांसी देने के बदले गोली से उड़ा दिया जाए।

अब यह सिद्ध करना आपका काम है कि आपको उस निर्णय में विश्वास है, जो आपकी सरकार के एक न्यायालय ने दिया है। आप अपने कार्य द्वारा इस बात का प्रमाण दीजिए। हम विनयपूर्वक आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप अपने सेना-विभाग को आदेश दें कि हमें गोली से उड़ाने के लिए एक सैनिक टोली भेज दी जाये।

भवदीय
भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव

✡✡

फांसी के एक दिन पहले 22 मार्च, 1931 को, सेस्तुल जेल के ही 14 नम्बर वार्ड में रहने वाले बंदी क्रान्तिकारियों ने भगतसिंह के पास एक परचा भेजा—'सरदार यदि आप फांसी से बचना चाहते हो तो बताएं। इन घड़ियों में शायद कुछ हो सके।' भगतसिंह ने उन्हें यह उत्तर लिख भेजा।

साथियो,

जिन्दा रहने की ख्वाहिश कुदरती तौर पर मुझमें भी होनी चाहिए। मैं इसे छिपाना नहीं चाहता, लेकिन मेरा जिन्दा रहना मशरूत (एक शर्त पर) है, मैं कैद होकर या पाबन्द होकर जिन्दा रहना नहीं चाहता।

मेरा नाम हिन्दुस्तानी इन्कलाब पार्टी (भारतीय क्रान्ति) का निशान (मध्य बिन्दु) बन चुका है और इन्कलाब-पसन्द पार्टी (क्रान्तिकारी दल) के आदर्शों और बलिदानों ने मुझे बहुत ऊंचा कर दिया है। इतना ऊंचा कि जिन्दा रहने को सूरत में इससे ऊंचा मैं हरगिज़ नहीं हो सकता।

आज मेरी कमजोरियां लोगों के सामने नहीं हैं। अगर मैं फांसी से बच गया तो वह जाहिर हो जाएंगी और इन्कलाब का निशान मद्धिम पड़ जायेगा या शायद मिट ही जाये, लेकिन मेरे दिलेराना ढंग से हंसते-हंसते फांसी पाने की सूरत में हिन्दुस्तानी माताएं अपने बच्चों के भगतसिंह बनने की आरजू किया करेंगी और देश की आज़ादी के लिए बलिदान होने वालों की तादाद इतनी बढ़ जायेगी कि इन्कलाब को रोकना इम्पीरियलिज्म (साम्राज्यवाद) की तमामतर (सम्पूर्ण) शैतानी शक्तियों के बस की बात न रहेगी।

हां, एक विचार आज भी चुटकी लेता है। देश और इन्सानियत के लिए जो कुछ हसरतें मेरे दिल में थीं, उनका हज़ारवां हिस्सा भी मैं पूरा नहीं कर पाया। अगर जिन्दा रह सकता, तो शायद इनको पूरा करने का मौका मिलता और मैं अपनी हरसतें पूरी कर सकता।

इसके सिवा कोई लालच मेरे दिल में फांसी से बच रहने के लिए कभी नहीं आया। मुझेसे ज्यादा खुशकिस्मत कौन होगा? मुझे आजकल अपने आप पर बहुत नाज (गर्व) है। अब तो बड़ी बेताबी से आखिरी इम्तिहां (परीक्षा) का इन्तजार है। आरजू है कि यह और करीब हो जाये।

आपका साथी<br>
भगतसिंह

✿✿

23 दिसम्बर, 1930 को जब पंजाब के गवर्नर सर ज्याफ्रेडी मांटमोरेंसी विश्वविद्यालय (लाहौर) में दीक्षान्त भाषण देकर हाल से बाहर निकल रहे थे, क्रान्तिकारी युवक हरिकृष्ण ने अपने पिस्तौल से छह गोलियां चलाई। दो ने उन्हें घायल कर दिया। एक लगी पुटठे से ऊपर और दूसरी बायें हाथ में। एक गोली पुलिस सब इन्सपेक्टर चाननसिंह के जबड़े में लगी। वह अस्पताल में जाकर मर गया। हरिकृष्ण मौके पर ही पकड़ लिया गया और जनवरी, 1931 में उस पर केस चला। अदालत में उसने वकील की सलाह से अपने बयान में अपना अपराध स्वीकार कर लिया। अपनी बहस में उसके वकील ने यह दृष्टिकोण लिया कि गवर्नर को मारना हरिकृष्ण का उद्देश्य नहीं था—बह तो सिफ चेतावनी देना चाहता था।

मुकदमा लड़ने का यह ढंग भगतसिंह को पसन्द नहीं आया और उन्होंने अपनी कोठरी से इस सम्बन्ध में अपने एक मित्र को दो पत्र लिखे, जिनमें इस मुद्दे पर बहस की कि क्रान्तिकारियों को किस तरह मुकदमा लड़ना चाहिए। इनमें पहला पत्र अब अप्राप्य है, दूसरा पत्र जून, 1931 में 'पीपुल' नामक अंग्रेज़ी साप्ताहिक में छप जाने के कारण सुरक्षित रह गया। स्मरणीय है कि भगतसिंह को 23 मार्च, 1931 को और हरिकृष्णा को 9 जून, 1931 को फांसी दे दी गई। भगतसिंह के इस पत्र का यह प्रभाव अवश्य हुआ कि हरिकृष्ण की अपील हाईकोर्ट और बाद में प्रीवी कौंसिल में अवश्य हुई और जम कर मुकदमा लड़ा गया।

मुझे यह जानकर बहुत अफसोस है कि इस सम्बन्ध में मेरा पहला पत्र समय पर अपने ठिकाने नहीं पहुंच सका और इसलिए उससे कोई फायदा न हो सका, या यह कि वह उस उद्देश्य की पूर्ति में असफल रहा, जिसके लिए वह लिखा गया था। इसलिए मैं आमतौर पर यह पत्र राजनैतिक मुकदमों में पैरवी के सवाल के बारे में और खासतौर पर क्रान्तिकारी मुकदमे के बारे में अपने विचारों को प्रकट करने के लिए लिख रहा हूं। पहले पत्र में विचारे गये खास-खास नुक्तों के बिना इसका एक और मकसद भी होगा, 'और वह यह कि मैं घटनाओं से गुजर जाने के बाद समझदार नहीं बन रहा हूं।

खैर मैंने उस खत में यह लिखा था कि वकील पैरवी के लिए जो दलील दे रहा था, उन्हें माना न जाये, पर बावजूद आपके और मेरे विरोध के उन्हें मान लिया गया है।

बावजूद इसके हम अधिक रोशनी में इस बात पर विचार कर सकते हैं और पैरवी से संबंधित आगामी नीति के बारे में ठोस विचार बना सकते हैं।

आप यह जानते ही हैं कि मैं कभी भी हमारे राजनैतिक बन्दियों की बचाव बाली पैरवी करने का समर्थक नहीं रहा, परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि उचित संधर्ष की खूबसूरती बिलकुल ही बिगाड़ दी जाये। इसपर विशेष ध्यान की आवश्यकता है कि खूबसूरती शब्द यहां अवास्तविक शक्ल में प्रयोग नहीं किया गया है। इसका उस उद्देश्य से सम्बन्ध है, जिसने कि एक खास कार्रवाई के लिए हरिकृष्ण को प्रेरित किया। जब मैं यह कहता हूं कि सब राजनैतिक बन्दियों को अपनी पैरवी स्वयं करनी चाहिए तो मैं यह कुछ विशेष मान्यताओं के साथ कहता हूं। मेरा मतलब सिर्फ एक ही बात से साफ हो सकता है।

एक मनुष्य एक ही विशेष मकसद को सामने रखकर काम नहीं करता। उसकी

गिरफ्तारी के बाद उसके काम का राजनैतिक महत्व समाप्त नहीं होना चाहिए और काम की अपेक्षा मरने की तैयारी ही ज्यादा ज़रूरी नहीं बन जानी चाहिए। हम उसे उदाहरण की मदद से और साफ करें। हरिकृष्ण गवर्नर को गोली मारने के लिए आये। मैं इस कार्रवाई का नैतिक पक्ष नहीं लेना चाहता। मैं सिर्फ इस केस के राजनैतिक पहलू पर विचार करना चाहता हूं। गोली मारने वाला व्यक्ति गिरफ्तार कर लिया गया। दुर्भाग्य से पुलिस कर्मचारी इस कार्रवाई में मर गया। अब पैरवी का सवाल सामने आता हैं जब गवर्नर बच गया तो हरिकृष्ण के केस में बड़ा सुन्दर बयान आ सकता था; अर्थात् असली तथ्यों का बयान, जैसाकि हमारे केस में नीचे की अदालत में दिया गया था। इस प्रकार यह कानूनी मकसद को भी पूरा कर देता और कार्य के उद्देश्य को भी ऊपर उठाता, पर वकील की कोशिश और काबिलियत सब-इन्सपेक्टर की मौत के बोर में दलीलें देने में उलझी रही। उसे यह कहकर क्या मिला कि हरिकृष्ण सिर्फ गवर्नर को जख्मी करना चाहता था, मारना नहीं चाहता था? इसी तरह की दूसरी बातें थीं। क्या कोई समझदार एक क्षण के लिए भी ऐसी बात की संभावना कर सकता है? क्या इस दलील की कोई कानूनी कीमत थी? बिलकुल कोई कीमत नही, तो फिर गवर्नर पर गोली चलाने के विशेष कार्य की ही नहीं बल्कि सारी क्रान्तिकारी लहर की खूबसूरती खराब करने से क्या फायदा था?

प्रतिवाद तथा भावनाएं ज्यादा देर तक नहीं चल सकतीं। क्रान्तिकारी दल के द्वारा सरकार को बहुत समय पहले चेतावनी दी जा चुकी। इसके लिए क्रान्तिकारी दल को भारत ने बेहद इज्ज़त दी थी और क्रान्ति की लहर सही स्वरूप में आरंभ हो गई थी। वायसराय की गाड़ी पर बम फेंकने का कार्य एक चेतावनी नहीं था; भले ही वह असफल रहा। चिटगांव की घटनाएं न चेतावनी थीं और न केवल विरोध-प्रदर्शन। इसी तरह हरिकृष्ण का एक्शन अपने-आपमें क्रान्तिकारी संघर्ष का एक हिस्सा था, चेतावनी बिलकुल नहीं। कार्रवाई की असफलता के बाद अभियुक्त इस चीज को खिलाड़ी की तरह ले सकता है। मकसद पूरा होने पर संभव है भाग्यवश गवर्नर के बच जाने से हरिकृष्ण प्रसन्न हुआ हो। व्यक्तिगत रूप में किसी को मारने से कोई लाभ भी नही। इन कार्यो का राजनैतिक महत्त्व होता है। ये बह वातावरण और सोचने का ढंग बनाने में मदद करते हैं जोकि आखिरी संघर्ष के लिए बहुत जरूरी है। इतना ही पर्याप्त है। व्यक्तिगत कार्य लोगों की सहानुभूति जीतने के लिए होते हैं। हम कभी-कभी इनको अपने कार्यो के द्वारा प्रोपेगेंडा का नाम दे देते हैं।

इस विचार की रोशनी में क्रान्तिकारी मुकदमों की पैरवी होनी चाहिए। यह एक आम समझ वाला नियम है कि संघर्ष करने वाली सभी पार्टियां प्राप्त अधिक करना चाहती हैं और खोना कम। कोई भी जरनल ऐसी युद्ध-नीति नहीं अपना सकता जिसमें उसे सोचे हुए लाभ से अधिक बलिदान देना पड़े मुझसे अधिक कोई भी हरिकृष्ण के अमूल्य जीवन को बचाने के लिए बेताब नही होगा। पर मैं आपको बताना चाहता हूं कि जो चीज उसकी जिन्दगी को अनमोल बनाती है उसे आंख से ओझल नहीं करना चाहिए। किसी भी कीमत पर जीवन को बचाना ही हमारी नीति नहीं है। यह कांग्रेस की नीति हो सकती है, यह आरामकुर्सियों वाले राजनीतिज्ञों की नीति हो सकती है, परन्तु यह हमारी नीति नहीं। बचाव नीति (डिफेंस पालिसी) अधिकतर अभियुक्त के अपने सोचने के ढंग पर आधारित होती है, पर यदि अभियुक्त न सिर्फ निडर हो, बल्कि हमेशा की तरह जोशीला भी रहे तो

जिस कार्य के लिए उसने अपनी जिन्दगी का खतरा मोल लिया उसे बयान में पहले लिया जाना चाहिए और व्यक्तिगत मसलों को बाद में। इसके बाद भी एक तरह की उलझन भरी स्थिति हो सकती है क्योंकि कुछ ऐसे केस हो सकते हैं जिनमें स्थानीय महत्त्व के होने पर भी कार्रवाई (एक्शन) का आम महत्व न हो। वहां अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करने में अभियुक्त को भावुक नहीं होना चाहिए। निर्मलकान्त राय का मशहूर मुकदमा इसका सबसे अच्छा उदाहरण है, परन्तु इस तरह के राजनैतिक महत्त्व के केस में व्यक्तिगत पहलू को राजनैतिक पहलू से अधिक महत्त्व नही दिया जाना चाहिए। अगर आप मेरा निष्पक्ष मत प्रस्तुत केस के बारे में पूछना चाहते हैं तो मैं साफ-साफ बताना चाहता हूं कि यह ऐतिहासिक महत्त्व की राजनैतिक हत्या बिलकुल नहीं है।

यहां मैं एक बात अवश्य बताना चाहता हूं कि इस केस का गला घोंटने वाले लोग, जिन्हें अपनी गलती का अहसास हो गया है और उसके बाद जो समझदार बन गये हैं, पर अपने कन्धों पर उत्तरदायित्व लेने का हौसले नहीं कर पा रहे हैं, हमारे नौजवान साथी के चमत्कारी चरित्र के सौन्दर्य को नीचा दिखाने की कोशिश कर रहे हैं। मैंने उन्हें यह कहते सुना है कि हरिकृण बहादुरी से सामना करने में कांप गया है। यह एक हद दर्ज़े का शर्मनाक झूठ है। मुझे उस जैसा हौसला वाला नौजवान कभी कोई नही मिला। लोगों को हमारे ऊपर दया करनी चाहिए। हौसला पस्त करने और नीचा दिखाने से तो अच्छा है कि हमारी तरफ ध्यान ही न दें।

वकीलों को उन नौजवानों की जिन्दगियां, यहां तक कि मौतों को खराब करने में इतने आत्महीन विशेषज्ञ (बे-जमीरे-एक्सपर्ट) नहीं होना चाहिए, जो दुःखी जनता की मुक्ति के पवित्र काम में अपना आपा न्योछावर करने के लिए आते हैं। मुझे सचमुच यह जानकर बहुत दुःख होता है कि धीरे-धीरे हम राजनैतिक कार्यकर्ताओं की एक नई अफसरशाही बना रहे हैं। यह बात ठीक नहीं है तो भला एक वकील किसी राजनैतिक मुकदमे में यकीन न आने वाली फीस क्यों मांगे, जैसाकि इस केस में फीस दी गई है!

राजद्रोह के केसों में मैं वह हद बता सकता हूं जिस तक हम पैरवी की इजाज़त दे सकते हैं। गत वर्ष जब एक साथी पर समाजवादी भाषण देने का मुकदमा चला और उसे गलत ढंग पर लड़ा गया तो हमें केवल हैरानगी ही हुई थी। ऐसे केसों में हमें अपने द्वारा प्रचारित विचारों और आदर्शों को स्वीकार कर लेना चाहिए और स्वतंत्र भाषण का अधिकार मांगना चाहिए परन्तु कहां यह बात और कहां यह कहना कि हमने कुछ कहा ही नहीं! हम इस तरह अपने ही आन्दोलन के हितों के विरुद्ध जाते हैं। कांग्रेस को मौजूदा आन्दोलन में बिना मुकदमों की पैरवी किये जेल जाने से नुकसान पहुंचा है। मेरे विचार में यह एक गलती थी।

खैर, मेरा खयाल है कि आप मेरा यह पत्र पिछले पत्र के साथ पढ़ेंगे और राजनैतिक मुकदमों की पैरवी के बारे में मेरे विचारों से अच्छी तरह परिचित हो जाएंगे। हरिकृष्ण के केस में मेरे खयाल में जल्दी से जल्दी हाईकोर्ट में अपील कर देनी चाहिए और उसको बचाने की पूरी कोशिश होनी चाहिए। मुझे आशा है कि मेरे यह दोनों पत्र प्रत्येक बात आपको बता देंगे जो मैं आपको बताना चाहता हूं।

आपका

✡✡

अपीली काल कोठरी में बैठे-बैठे भगतसिंह ने गम्भीर अध्ययन और गहन चिन्तन ही नहीं किया, उसे पचाकर कागजों पर भी उतार दिया। उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं। उनमें आत्मकथा, दि डोर टु डेथ (मौत के दरवाज़े पर), आइडियल आफ सोशलिज्म (समाजवाद का आदर्श) और स्वाधीनता की लड़ाई में पंजाब का पहला उभार-मुख्य हैं। ये पुस्तकें सुरक्षित रूप में जेल से बाहर भेज दी गई थीं, पर वे नष्ट हो गईं। भाग्य से 'स्वाधीनता की लड़ाई में पंजाब का पहला उभार' के कुछ अंश उन्हीं दिनों उर्दू साप्ताहिक 'वंदे मातरम' में क्रमश: छपे थे। वे अंश सुरक्षित रह गये। अब हिन्दी रूप में यहां प्रस्तुत हैं।

# स्वाधीनता की लड़ाई में पंजाब का पहला उभार

पंजाब के भूतपूर्व गवर्नर सर माईकेल ओ डायर ने अपनी पुस्तक 'इंडिया ऐज़ आई न्यू इट' में एक अप्रिय और कटु, किन्तु साथ ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सच्चाई को ही उस समय प्रकट किया है, जब उन्होंने कहा है कि पंजाब राजनैतिक हलचलों में सबसे पीछे है। पंजाब के राजनैतिक आन्दोलनों का जिन्हें थोड़ा-सा भी ज्ञान है, इस सच्चाई को भली प्रकार समझ सकते हैं।

आज तक का इतिहास देखिए। भारत को स्वाधीन कराने के लिए सबसे अधिक बलिदान इस प्रान्त ने किया है। इसके लिए भारी-भारी संकट इस प्रान्त की जनता को सहन करने पड़े। राजनैतिक, धार्मिक आदि आन्दोलनों में पंजाब भारत के अन्य प्रान्तों से आगे रहा और देश के लिए जान-माल की कुर्बानी सबसे अधिक इसी सूबे के लोगों ने दी। इस पर भी हमें सिर झुकाकर यह स्वीकार करना पड़ता है कि राजनैतिक क्षेत्र में पंजाब सबसे पीछे है।

इसका कारण केवल यह है कि राजनैतिक आन्दोलन यहां की जनता के व्यक्तिगत जीवन का एक आवश्यक अंग नहीं बन सका। साहित्यिक क्षेत्र में भी इस प्रान्त ने यथायोग्य स्थान प्राप्त नहीं किया। शिक्षित वर्ग के लिए उस समय तक (माईकेल ओ डायर द्वारा पुस्तक लिखे जाते समय तक) इस देश की स्वाधीनता का प्रश्न सबसे अधिक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण नहीं बना था, इसीलिए अक्सर कहा जाता है कि यह प्रान्त बहुत पीछे है। हिन्दुस्तान में और भी बहुत—से ऐसे प्रांत हैं, जो पंजाब से बहुत पीछे हैं, किन्तु खेद है कि यह अभागा प्रान्त इस प्रकार के आरोप सहकर भी पीछे ही है।

पंजाब की कोई अपनी विशेष भाषा नहीं। भाषा न होने के कारण साहित्य की उन्नति के क्षेत्र में भी कोई प्रगति नहीं हो सकी। इसलिए शिक्षित समुदाय को पश्चिमी साहित्य पर ही निर्भर रहना पड़ा। इसका खेदजनक परिणाम यह हुआ कि पंजाब का शिक्षित वर्ग अपने प्रान्त की राजनैतिक हलचलों से अलग-थलग-सा रहा है। इसी कारण

पंजाब के साहित्य-कला-क्षेत्र में राजनीति को स्थान नहीं मिल सका। यही कारण है कि पंजाब में ऐसे कार्यकर्ता इने-गिने ही हैं, जो अपना सम्पूर्ण जीवन राजनीति को ही दे सके हैं। इसी आधार पर इस प्रान्त पर ऐसे आरोप लगाये जाते हैं। अपने प्रान्त की इस कमी की ओर प्रान्त नेताओं और पुरुष-समाज का ध्यान आकर्षित करना ही इन लोगों का उद्देश्य है।

गुरु रामसिंहजी के नेतृत्व में हुए कूका-विद्रोह से लेकर आज तक (पंजाब में) अनेक आन्दोलन चले और उनसे जनता में ऐसी चेतना आई कि वह स्वतंत्रता की वेदी पर अपना सर्वस्य न्योछावर करने के लिए तैयार हो गई तथा साथ ही बहुत-से व्यक्तियों ने अपने प्राणों का बलिदान दिया। उनका जीवनचरित्र था इतिहास प्रत्येक स्त्री-पुरुष के साहस को बढ़ाएगा और वह भावी आन्दोलनों को भी (पिछले इतिहास के) अध्ययन और अनुभवों के प्रकाश में भली प्रकार चला सकेंगे। इस इतिहास को लेखबद्ध करने से यह कहना मेरा उद्देश्य कदापि नहीं कि भविष्य में भी ठीक इसी प्रकार के आन्दोलन सफल हो सकेंगे। मेरा उद्देश्य तो केवल यह है कि जनता शहीदों की कुर्बानियों और जीवन-भर देश के ही कार्य में लगे रहने के उनके उदाहरणों से प्रेरणा प्राप्त करें और उनका अनुकरण करें। समय आने पर किस प्राणाली से कार्य करना है इसका निश्चय कार्यकर्त्ता देश की तत्कालीन परिस्थिति को देखते हुए स्वयं कर सकते हैं।

# पंजाब में राजनैतिक हलचलें कैसे प्रारम्भ हुई?

सन् 1907 से पूर्व पंजाब में बिलकुल ही खामोशी थी। विद्रोह (कूका-विद्रोह) के पश्चात् कोई ऐसा राजनैतिक आन्दोलन यहां नहीं उठा, जो शासकों की नींद खोल सकता। सन् 1908 के अंत में पंजाब में पहली बार कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, किन्तु उस समय कांग्रेस के कार्य का आधार शासकों के प्रति वफादारी प्रकट करता था, इसलिए राजनैतिक क्षेत्र में उसका कोई उल्लेखनीय प्रभाव नही पड़ा। सन् 1905-1906 में बंगाल विभाजन के विरुद्ध, जो शक्तिशाली आन्दोलन उस समय खड़ा हुआ था और स्वदेशी के प्रचार तथा विदेशी के बहिष्कार की जो हलचल प्रारम्भ हुई थी उसका पंजाब के औद्योगिक जीवन तथा साधारण जनता पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा था। उन दिनों यहां (पंजाब में) भी स्वदेशी वस्तुएं विशेषत: खांड तैयार करने का विचार पैदा हुआ और देखते-देखते एक-दो मिलें भी खुल गई। यद्यपि प्रान्त के राजनैतिक जीवन पर इसका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा, किन्तु सरकार ने इस उद्योग की नष्ट करने के लिए गन्नों की खेती का लगान तीन गुना कर दिया। पहले एक बीघे का लगान जहां ढाई रुपया था, वहां अब साढ़े सात रुपये देने पड़ते थे। इसमे किसानों पर एक भारी बोझ आ पड़ा और वे एकदम हतबुद्धि-से रह गये।

# नया कालोनी कानून

दूसरी ओर लायलपुर इत्यादि में सरकार ने मुफ्त जमीनें देकर और नई नहर खुदवाकर जालंधर, अमृतसर, होशियारपुर इत्यादि के निवासियों को बहुत-सी सुविधाओं का लालच देकर इस क्षेत्र में बुला लिया था और इस प्रकार इस उपजाऊ और सैनिक भर्ती की भी दृष्टि से उपयोगी जंगल क्षेत्र को बसा दिया था। लोग अपनी पुरानी जमीन-जायदाद (भले ही मामूली हो) छोड़कर आये और कई वर्ष तक अपना खून-पसीना एक करके इन लोगों ने इस जंगल को गुलज़ार बना दिया, लेकिन अभी ये लोग चैन की सांस पूरी तरह लेने भी न पाये थे। कि सरकार का नया कानून इनके सर पर आ खड़ा हुआ। यह एक्ट क्या था, कृषकों का अस्तित्व ही मिटा देने का एक षड्यंत्र था। इस एक्ट के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की निजी सम्पत्ति (जमीन-जायदाद) का अधिकारी केवल उसका बड़ा लड़का ही हो सकता था। छोटे पुत्रों का उसमें कोई हिस्सा नहीं रखा गया था। बड़े लड़के के मरने पर भी वह जमीन या अन्य जायदाद छोटे लड़को को नहीं मिल सकती थी, बल्कि उस पर सरकार का अधिकार हो जाता था।

कोई व्यक्ति अपनी जमीन पर खड़े वृक्षों को नहीं काट सकता था। उनसे वह एक दातुन तक नहीं तोड़ सकता था। जो जमीनें उनको मिली थीं, उन पर वे केवल खेती कर सकते थे। किसी प्रकार का मकान या झोपड़ा, यहां तक कि पशुओं को चारा डालने के लिए खुड्ली (कुंड) तक नहीं बना सकते थे। कानून का थोड़ा-सा भी उल्लंघन करने पर, चौबीस घंटे का नोटिस देकर तथाकथित अपराधी की जमीन जब्त की जा सकती थी।

कहा जाता है कि ऐसा कानून बनाकर सरकार चाहती थी कि थोडे-से विदेशियों को तमाम जमीन का मालिक (ज़मींदार) बना दिया जाए और जमीन के हिन्दुस्तानी काश्तकार उनके सहारे पर उनके दबाव में रहें। इसके अतिरिक्त सरकार यह भी चाहती थी कि अन्य प्रान्तों की भांति पंजाब में थोड़े-से बड़े-बड़े ज़मींदार हों (इस कानून के अनुसार उनमें भी काफी संख्या में अंग्रेज़) और शेष निहायत गरीब काश्तकार हों इस प्रकार जनता दो वर्गो में विभक्त हो जाए। मालदार कभी और किसी भी हालत में सरकार विरोधियों का साथ देने का साहस नहीं कर सकेंगे और निर्धन कृषकों को, जो दिन-रात मेहनत करके भी पेट नहीं भर सकेंगे, इसका अवसर नहीं मिलेगा। इस प्रकार सरकार खुले हाथों जो चाहेगी, करेगी।

# अशान्ति के बीज

इन दिनों यू.पी. और बिहार वगैरह प्रान्तों में किसानों की हालत ऐसी ही दीन-हीन थी, लेकिन पंजाब के लोग जल्दी ही संभल गये। सरकार की इस नीति के विरुद्ध उन्होंने जबर्दस्त आन्दोलन प्रारम्भ किया। रावलपिण्डी की तरफ भी इन्हीं दिनों नया बन्दोबस्त खत्म हुआ था और लगान बढ़ाया गया था। इस प्रकार सन् 1907 के प्रारंभ में ही अशान्ति के समस्त कारण उपस्थित थे। इस वर्ष के प्रारंभ में ही पंजाब के गवर्नर सर डैज़िल इबटसन ने कहा भी था कि “इस समय यद्यपि प्रकट रूप से शान्ति है, किन्तु जनता के हृदय में असंतोष उत्पन्न होता जा रहा है।”

इन दिनों देश-भर में एक खामोशी-सी छाई हुई थी। ‘ठहरो और देखो’ की मनःस्थिति में जनता थी। यह खामोशी तूफान आने से पहले की शान्ति थी। बेचैनी पैदा होने के सभी कारण उपस्थित थे, विशेषत: पंजाब में तो ऐसी परिस्थितियां थीं कि अशान्ति उत्पन्न हो जाना सर्वथा उचित और आवश्यक ही था।

सन् 1960 ई. का कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। दादा भाई नौरोजी उसके सभापति थे। इस अधिवेशन में उन्होंने सर्वप्रथम अपने भाषण में ‘स्वराज्य’ शब्द का उच्चारण किया। ब्रिटिश पार्लियामेंट के अपने निजी अनुभवों के आधार पर स्व. दादाभाई ने कहा था कि ‘यदि हम कुछ प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें अपने अन्दर ताकत पैदा करनी होगी। अपने पांवों के बल पर ही हमें खड़ा होना होगा। पत्थरों की भांति अविचल दृष्टि से देखते रहने मात्र से ही काम नहीं चलेगा।’

# लाला लाजपतराय

ठीक यही बात एक वर्ष पूर्व बनारस के कांग्रेस अधिवेत्तन में पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय जी ने कही थी। पूज्य लाला जी, कांग्रेस के प्रधान स्वर्गीय गोखले के साथ एक डेपूटेशन में इंग्लैंड भेजे गये थे। वहां से लौटकर उन्होंने यह बहुत ही गरम भाषण दिया था।

# लोकमान्य तिलक

सन् 1909 के कांग्रेस अधिवेशन में लोकमान्य तिलक का बोलबाला था। नवयुवक समुदाय उनकी खरी और स्पष्ट बातों के कारण उनका भक्त बन गया था। उनकी निर्भीकता, कुछ कर गुजरने की भावना और बड़े-से-बड़े कष्ट सहने के लिए प्रतिक्षण तैयार रहने के कारण नवयुवक उनकी ओर खिंचे चले आ रहे थे। कांग्रेस अधिवेशन के अतिरिक्त कांग्रेस के पंडाल से बाहर भी लोकमान्य के अनेक भाषण इस अवसर पर हुए थे।

# सरदार किशनसिंह और सरदार अजीतसिंह

जो युवक लोकमान्य के प्रति विशेष रूप से आकर्षित थे, उनमें कुछ पंजाबी नौजवान भी थे। ऐसे ही पंजाबी नौजवान उस अवसर पर लोकमान्य से मिले, जिनका उत्साह तथा सक्रियता देखकर लोकमान्य को बहुत ही प्रसन्नता हुई और पंजाब में राजनैतिक आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने का परामर्श देकर लोकमान्य ने उन दोनों नवयुवकों को विदा किया। ये दोनों नवयुवक मेरे पूज्य पिता जी सरदार किशनसिंह जी

और मेरे आदरणीय चाचा सरदार अजीतसिंह जी थे।

# भारतमाता अखबार तथा मेहता नन्दकिशोर

सरदार किशनसिंह जी और सरदार अजीतसिंह जी ने वापस लाहौर आकर 'भारत माता' नामक एक मासिक पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया तथा आदरणीय मेहता नन्दकिशोर को साथ लेकर अपने विचारों का प्रचार करने लगे। इनके पास न धन था और न इनका धनीवर्ग से सम्पर्क ही था। किसी सम्प्रदाय के नेता या महन्त भी ये नहीं थे, अत: प्रचार-कार्य के लिए अपेक्षित सभी साधन इन्हें स्वयं ही जुटाने पड़े। एक दिन घन्टी बजाकर बाजार में कुछ लोगों को जमा कर लिया और इस विषय पर भाषण देने लगे कि विदेशियों ने भारतीय उद्योग एवं व्यवसाय को किस प्रकार नष्ट किया है। वहीं यह भी ऐलान कर दिया कि आगामी रविवार को एक महत्वपूर्ण सभा भारत माता के कार्यालय के पास, जो लाहौरी और शाहआलमी दरवाजे के मध्य में स्थित है, होगी। पहली सभा पापड़ मंडी में, दूसरी लाहौरी मंडी हुई। तीसरी सभा में भाषणों से पूर्व एक पंजाबी नवयुवक ने बड़ी ही मर्मस्पर्शी तथा देशभक्ति की भावनाओं से सराबोर एक नज़्म पढ़ी, जिसकी श्रोताओं ने बहुत ही प्रशंसा की। अब यह नौजवान भी इसी बलि में सम्मिलित हो गये थे। नौजवान पंजाब के प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि लाला लालचन्द 'फलक' थे, जो आज तक अपनी उत्साहपूर्ण कविताओं से देश को जगाते रहे हैं। इसी सप्ताह लाला पिण्डीदास जी तथा डाक्टर ईश्वरी प्रसाद जी इत्यादि कुछ और सज्जन भी इस दल में सम्मिलित हुए। इन सबके सम्मिलित होने पर 'अंजुमन मुहिब्बाने वतन' के नाम से एक संस्था बनाई गई, जो बाद में 'भारत माता सोसायटी' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

अगले रविवार को फिर एक सार्वजनिक-सभा होने वाली थी। उसी दिन लाहौर में श्रीमती ऐनी बेसेन्ट के भाषण का भी आयोजन था। कुछ मित्रों ने परामर्श दिया कि इस अवसर पर भारत माता सोसायटी भंग कर दी जाये। किन्तु यह परामर्श स्वीकार नहीं किया गया और न अपनी सभा को ही स्थगित करना उचित समझा। आखिर सभा हुई तो उपस्थिति पर्याप्त थी। इसी सभा में यह घोषणा कर दी गई कि प्रत्येक रविवार को सभा हुआ करेगी और संस्था के प्रधान सरदार अजीतसिंह जी तथा सेक्रेटरी मेहता नन्दकिशोर चुने गये हैं।

# जाट किसानों की सभा

एक-दो महीने तक इसी प्रकार प्रचार होता रहा। एक दिन लाहौर और अमृतसर क्षेत्र के जाट किसानों ने लगान बढ़ाये जाने के विरुद्ध एक सभा करने का निश्चय किया। आलमी दरवाजे के बाहर रतनचन्द की सराय में यह सभा आयोजित की गई थी, किन्तु जब जाट लोग जमा हो गये तो डिप्टी कमिश्नर ने रतनचन्द के लड़के को बुलाकर

जायदाद जब्त कर लेने की धमकी दी। इस पर रतनचन्द के लड़के ने वहीं एकत्रित हुए किसानों को अपनी सराय से बाहर निकाल दिया। तब किसानों ने नगर के नेता माने जाने वाले सज्जनों से सम्पर्क स्थापित किया, किन्तु वहां से भो उनको साफ जवाब मिला। हर तरफ से निराश होकर वे बेचारे म्युनिसिपल गार्डन में जा बैठे। इसी बीच भारत माता सोसायटी के सदस्यों को इसकी सूचना मिली और ये इन लोगों को अपने स्थान पर ले गये। सोसायटी के पास एक कमरे के अतिरिक्त एक विशाल मैदान भी था। इस मैदान में दरियां बिछाकर शामियाना लगवा दिया गया और एक तरफ उन किसानों के भोजन के लिए लंगर का प्रबन्ध भी कर दिया गया। किसानों का उत्साह देखकर भारत माता सोसायटी के सदस्यों का हौसला और भी बढ़ गया।

इसके पश्चात् देहातों के दौरे का कार्यक्रम बनाया गया, जिससे किसानों को लगानबन्दी के लिए तैयार किया जा सके। यह सरकार के विरुद्ध युद्ध घोषणा थी और जनता में जोश इतना था कि इस संघर्ष में वह अपना सर्वस्व दांव पर लगा देने के लिए तत्पर मालूम होती थी।

# सूफी अम्बाप्रसाद

ठीक इन्हीं दिनों भारत माता सोसायटी में एक उच्च कोटि के देशभक्त, राजनीतिज्ञ और लेखक प्रविष्ट हुए। आपका नाम श्री सूफी अम्बाप्रसाद था। सूफी जी का जन्म सन् 1858 में मुरादाबाद में हुआ था। वे उर्दू के प्रभावशाली लेखक, हिन्दु-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक तथा स्वतंत्रता के निर्भीक पुजारी थे। आपने एक साप्ताहिक पत्र निकाला था। इसके एक वर्ष पश्चात् ही इन्हें राजविद्रोह के अपराध में सवा दो वर्ष के लिए कारावास का दंड मिला। यह सजा काटकर वे आए, तो इसके साल-भर के भीतर ही भीतर आपके खिलाफ दूसरा मुकदमा खड़ा कर दिया गया और इस बार आपको छह वर्ष के कारावास का दंड मिला। उन दिनों राजविद्रोह में दण्ड पाये हुए कौदेयों को बहुत खतरनाक माना जाता था और उनके साथ जेल में व्यवहार भी बहुत बुरा होता था। सन् 1908 में आप जेल से रिहा हुए और पंजाब में यह नवीन राजनैतिक जागृति देखकर पंजाब चले आये। यहां आप 'हिन्दुस्तान साप्ताहिक' के सहकारी सम्पादक बनाये गये। आपके गरमागरम लेखों से और सम्पादकों में आपका नाम दिये जाने से अखबार के मालिकों को बड़ी घबराहट रहती थी। इस पर आपको उक्त अखबार से त्यागपत्र देना पड़ा। सबसे पहले आप जाटों की सभा में (भारत माता सोसायटी के सम्पर्क में) आये थे और फिर यहीं रह गये। बाद में तो सरदार अजीतसिंह जी से आपकी ऐसी घनिष्ठता हो गई कि एक-दूसरे से पृथक होना सर्वथा असम्भव हो गया।

इन्ही दिनों लायलपुर में एक बहुत बड़ा मेला होने वाला था। यह मेला मंडी मवेशियान (पशुओं की मंडी) के नाम से प्रसिद्ध था। इस मेले में हजारों लोग पशुओं को खरीदने-बेचने के लिए सम्मिलित हुआ करते थे। इस वर्ष दैनिक ' ज़मींदार' के मालिक मियां सिराजुद्दीन तथा एक-दो अन्य सज्जनों ने इस अवसर पर एक सभा करने का

निश्चय किया। इसमें नये कालोनी एक्ट के विरुद्ध प्रस्ताव पास करने थे। इस सभा में भाषण देने के लिए लाला लाजपतराय को विशेष रूप से बुलाया गया था। भारत माता सोसायटी के सदस्यों ने भी इस अवसर पर सभा करने का निश्चय किया। भारत माता सोसाइटी के सदस्य गरम दली थे, अत: वैधानिक रूप से आन्दोलन चलाने का विचार रखने वाले सज्जन इससे थोड़े घबरा गये। भारत माता सोसाइटी की ओर से दो कार्यकर्ता वहां इस उद्देश्य से भेजे गये कि वे वहां पहुंचकर अपने अनुकूल परिस्थिति बना लें, जिससे एक-दो दिन पश्चात् सरदार अजीतसिंह जी अपने अन्य साथियों के साथ पहुंचकर सफलता के साथ अपना प्रचार कर सकें।

ज़मींदार सभा की तरफ से जो पंडाल तैयार किया गया था, उसमें ही दो-एक दिन भाषण देकर भारत माता सोसाइटी के कार्यकर्त्ताओं ने जन साधरण की सहानुभूति प्राप्त कर ली। उधर जिस दिन लाला जी लाहौर से रवाना हुए उसी दिन सरदार अजीतसिंह जी ने भी वहां के लिए प्रस्थान किया। लाला जी ने सरदार जी से पुछवाया कि आपका भावी कार्यक्रम क्या है? अपने कार्यक्रम की सूचना भी लाला जी ने दी कि सरकार ने कालोनी एक्ट में जो थोड़ा-सा परिवर्तन कर दिया है, उसके लिए सरकार को धन्यवाद देते हुए शेष कानून को रद्द करने की मांग करेंगे।

सरदार जी ने उत्तर में कहा—हमारा कार्यक्रम तो यह है कि जनता को लगानबन्दी के लिए तैयार किया जाये। साथ ही हमारे कार्यक्रम में सरकार को धन्यवाद देने को तो कोई स्थान मिल ही नहीं सकता।

लाला जी और सरदार जी दोनों ही लायलपुर पहुंचे। स्वर्गीय लालाजी का विशाल जुलूस निकाला गया, जिसके कारण लगभग दो घंटे में लाला जी पाडाल में पहुंच सके, लेकिन हजारों लोग ऐसे भी थे, जो जुलूस में सम्मिलित न होकर सीधे पंडाल में ही पहुंच गए थे और वहां भाषण प्रारंभ हो गये थे। एक-दो छोटे-छोटे भाषणों के पश्चात् सरदार अजीतसिंह जी ने भाषण दिया। आप बहुत ही प्रभावशाली व्याख्यानदाता थे। आपकी निर्भीक भाषण-शैली ने जनता को आपका भक्त बना दिया और श्रोता पूरे जोश से भर गये। जिस समय इस सभा के आयोजक जुलूस को लेकर पण्डाल में पहुंचे, जनता 'भारत माता दल' के साथ हो चुकी थी। एक-दो नरम दली नेताओं ने सरदार अजीतसिंह को बोलने से रोकने की कोशिश की, लेकिन श्रोताओं ने उनको ऐसी फटकार बताई कि वे अपना—सा मुंह लेकर रह गये। इससे जनता के जोश में और भी वृद्धि हो गई। एक किसान ने उठकर ऐलान किया कि मेरे पास दस मुरब्बे जमीन है, जिसे मैं आपकी सेवा में अर्पित करता हूं और स्वयं अपनी पत्नी सहित देश सेवा के लिए तैयार हूं।

सरदार अजीतसिंह जी के पश्चात लाला लाजपतराय भाषण देने के लिए उठे। लाला जी पंजाब के बेजोड़ भाषणकर्त्ता थे, किन्तु उस दिन के वातावरण में वे जिस शान, जिस निर्भीकता और निश्चयात्मक भावनाओं के साथ बोले, उसकी कुछ बात ही निराली थी। लाला जी के भाषण की पंक्ति-पंक्ति पर तालियां बजती थीं और 'जय' के नारे बुलन्द होते थे। सभा के पश्चात् बहुत से व्यक्तियों ने अपने को देश का कार्य करने के लिए अर्पित करने की घोषणा की।

लायलपुर के डिप्टी कमिश्नर भी इस सभा में उपस्थित थे। सभा की कार्रवाई

देखकर उन्होंने यह परिणाम निकाला कि यह समस्त आयोजन एक षड्यंत्र था। लाला लाजपतराय इन सबके गुरु हैं और नवयुवक अजीतसिंह उनका शिष्य है। सरकार का यह विचार बहुत दिनों तक बना रहा। संभवत: लाला जी और सरदार अजीतसिंह जी को एक साथ निर्वासित करने का भी यही कारण था।

लाला जी के भाषण के पश्चात् श्रीयुत बांकेदयाल जी ने एक बहुत ही प्रभावशाली नज्म पढ़ी, जो बाद में अत्यन्त लोकप्रिय हो गई। यह नज्म 'पगड़ी संभाल ओ जट्टा' थी।

लाला बांकेदयाल पुलिस में सब इन्स्पेक्टर थे और सरकारी नौकरी छोड़कर इस आन्दोलन में सम्मिलित हो गये थे। उस दिन नज्म पढ़कर जब वे मंच से उतरे तो भारत माता दल के कार्यकर्ताओं ने उनको गले से लगा लिया।

लाहौर में हुए दंगे[1] के पश्चात् म्युनिसिपल बोर्ड ने एक प्रस्ताव पास किया था कि शहर के समस्त कालेजों के प्रिंसिपलों से कहा जाए कि वे विद्यार्थियों को राजनैतिक आन्दोलनों में भाग लेने से रोकें और उन्हें छात्रावास से बाहर न जाने दें। जो विद्यार्थी उनकी आज्ञा न मानें. उन्हें कड़ा से कड़ा दंड दिया जाए।

इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में लोकमान्य तिलक ने अपने मराठी साप्ताहिक 'केसरी' में एक जबरदस्त लेख लिखा था। लोकमान्य ने लिखा था कि इन दंगों पर किसे खेद तथा दुख न होगा? कौन चाहता है कि युवक थोड़े धैर्य से काम न लें, लेकिन म्यूनिसिपल बोर्ड के इस प्रस्ताव का क्या आशय है? पचास वर्ष पश्चात् आज देश के युवका में थोडी-सी जागृति दिखाई दी है, उसे एक साधारण से बलवे के कारण नष्ट करने का क्यों प्रयास किया जाए? आज युवकों में देशभक्ति की भावनाएं उमड़ रही हैं और वे स्वाधीनता के लिए बेचैन हैं, तो उनको प्रेम के साथ समझना चाहिए कि वे अपनी शक्ति का अपव्यय न करें।

जनता जोश में आकर जब कुछ कर गुजरती थी तो गरम दल की यही नीति होती थी। गरम दल के नेता जानते थे जब जनता में जागृति होती है, तो उसके साथ जोश ओर बैचेनी होना भी अवश्यम्भावी है। वह यह भी जानते थे कि फूंक-फूंककर कदम रखने वाले महानुभाव स्वतंत्रता के संघर्ष में अधिक समय तक नहीं टिक सकते। राष्ट्र के निर्माता तो नवयुवक ही हुआ करते हैं। किसी ने सच कहा —

"सुधार बूढ़े आदमी नहीं कर सकते। वे तो बहुत ही बुद्धिमान और समझदार होते हैं। सुधार तो होते हैं युवकों के परिश्रम, साहस, बलिदान और निष्ठा से जिनको भयभीत होना आता ही नहीं है और जो विचार कम तथा अनुभव अधिक करते हैं।"

ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय इस प्रान्त (पंजाब) के युवक इन भावनाओं से प्रभावित होकर ही स्वतंत्रता के संघर्ष में कूद पड़ते थे। तीन मास पहले जहां बिलकुल खामोशी थी, वहां अब स्वदेशी और स्वराज्य का आन्दोलन इतना बलशाली हो गया कि नौकरशाही घबरा उठी। उधर लालयपुर इत्यादि जिलों में नये कालोनी एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन चल रहा थी। वहां किसानों की हमदर्दी में रेलवे के मजदूरों ने भी हड़ताल की और उनकी सहायता के लिए धन भी एकत्रित किया जाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि अप्रैल के अन्त तक पंजाब सरकार घबरा गई। पंजाब के तत्कालीन गवर्नर ने भारत सरकार को अपने एक पत्र में यह सम्पूर्ण स्थिति बताते हुए लिखा था— "प्रान्त के

उत्तरीय जिलों में केवल शिक्षित वर्ग और उनमें भी विशेषत: वकील तथा विद्यार्थी समाज तक ही नये विचार सीमित हैं, किन्तु प्रान्त के केन्द्र की ओर बढते ही यह स्पष्ट दिखाई देने लगता है कि असंतोष और अशान्ति किसानों में भी तेजी से बढ़ती जा रही है।” इसी पत्र में आगे चलकर आपने लिखा था—“इन लोगों ने (आन्दोलन के नेताओं ने) अमृत्सर और फिरोजपुर में भी अशान्ति उत्पन्न करने की चेष्टा की थी। फिरोजपुर में उन्हें विशेष रूप से सफलता मिली है। रावलपिण्डी तथा लायलपुर की तरफ भी वह बेचैनी फैलाने में कामयाब हो रहे हैं। लाहौर का तो कहना ही क्या है।” पत्र के अन्त में कहा गया था—“कुछ नेता1 तो अंग्रेज़ो को देश से निकाल देने के मनसूबे बांध रहे हैं। कम से कम वह हमको शासन से हटा देने की चेष्टा में अवश्य हैं। वे या तो शक्ति द्वारा ऐसा करना चाहते हैं या जनता और शासन के मध्य असहयोग द्वारा। इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न करने के लिए वे उत्तरदायित्वहीन तरीकों से अंग्रेज़ो के प्रति द्वेष तथा घृणा उत्पन्न कर देना चाहते हैं। वर्तमान स्थिति बहुत ही नाजुक है और शीघ्र ही हमें इसका कुछ न कुछ प्रबन्ध करना चाहिए।”

---

1. यह दंगा शुद्ध राजनैतिक था और भारतमाता सोसायटी के एक जलसे मे पुलिस के हस्तक्षेप के कारण हुआ था। पुलिस ने राह-चलती को पकडकर पीटा था और कालेज से लौटते हुए विधार्थियो को भी। सरदार किशनसिह ने हिन्दुस्तानी पुलिस अफसरो की ही नहीं अंग्रेज़ डी.एस.पी मिस्टर बी.टी. की भी खूब मरम्मत की थी। पुलिस ने इसे ही एक बलवा बताया था।
गवर्नर का मुख्य संकेत सरदार अजीतसिंह की ओर था। इस रिपोर्ट के कुछ दिन बाद ही सरदार अजीतसिह गिरफ्तार कर (लायलपुर के जलसे से फैले वहम के कारण लाला लाजपतराय भी पकडे गये) माडला (वर्मा) में निर्वासित कर दिये गये। वहा से लौटकर भी सरदार अजीतसिह की हलचलें जारी रहीं। इसलिए अंग्रेज़ सरकार ने किसी मामले में फंसाकर उन्हें फासी देने की योजना बनाई, पर सरदार अजीतसिंह सरकार की आखों मे धूल झोंककर फरार हो गये और 29 साल विदेशों में जलावतन रहने के बाद 1947 में भारतीय स्वतत्रता के प्रभात में भारत लौटे।

अमर शहीद भगतसिंह को प्राय: क्रान्तिकारी देशभक्त के रूप में ही जानते हैं। परन्तु वह आरम्भ से ही अध्ययनशील, विचारक और कलम के धनी भी थे। अपनी 23 वर्ष की आयु में उन्होंने फ्रांस, आयरलैण्ड तथा रूस की क्रान्तियों का विशद अध्ययन किया था। नेशनल कॉलेज से लेकर फाँसी की कोठरी तक उनका अध्ययन बराबर जारी रहा। इस अध्ययन के फलस्वरूप वह गम्भीर चिन्तक और क्रान्तिकारी दार्शनिक बने।

असेम्बली में बम विस्फोट के समय फेंके गए पर्चे में उनका महत्त्वपूर्ण वाक्य था—'हम देश की जनता की ओर से कदम उठा रहे हैं।' इस घटना ने जनता को पहली बार विद्रोह का नेतृत्व सौंप दिया। शहीद भगतसिंह के ऐसे अनेक प्रामाणिक और ऐतिहासिक दस्तावेजों का अपूर्व संकलन किया है, सुश्री वीरेन्द्र सिन्धु ने अपनी इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक में। इस पुस्तक में शहीद भगतसिंह के ये दुर्लभ पत्र और दस्तावेज, जो सही मायने में राष्ट्र की मूल्यवान निधि है और आने वाली पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक भी, पहली बार हिन्दी में प्रकाशित हुए हैं।